# श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय

# दिल्ली विश्वविद्यालय

## हिंदी-विभाग

# सुगंधिका (ई-पत्रिका)

संपादक

डॉ. गीता शर्मा, डॉ.विभा नायक

छात्र संपादक

सुश्री यशी मिश्रा

2020-21

## प्राचार्या का संदेश

साहित्य मन की परतों को खोलता है और विचार जगत के अनेक आयामों को हमारे समक्ष उजागर करता है। साहित्यिक पत्रिकाएँ भावों और विचारों की वैविध्यपूर्ण गलियों में ले जाकर रचनात्मक संसार का भ्रमण कराने में हमारी सहायक बनती हैं। हिंदी विभाग की पत्रिका 'सुगंधिका' इस कार्य को कई वर्षों से निरन्तर करती आ रही है। छात्राओं तथा प्राध्यापकों की रचनाशीलता की झलक इसके माध्यम से रूपाकार ग्रहण करके सुधिजनों तक पहुँचती है। सुगंधिका के संपादकों, रचनाकारों और पाठकों को मेरी शुभकामनाएं। आप इसी प्रकार रचनाक्रम को आगे बढ़ाएं और पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति को विकसित करने में अपना योगदान देते रहें, इसी शुभेच्छा के साथ साधुवाद।

डॉ साधना शर्मा

प्राचार्या

## संपादक की कलम से ....

उत्साह,उमंग और कुछ कर गुज़रने के जज़्बे से भरी हुई हमारी छात्राओं में लेखन क्षमता की कोई कम नहीं है, इसकी झलक हमें महाविद्यालय से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में दिखाई देती है। उनकी भावनाएँ, उनके विचार, उनकी अभिव्यक्ति हृदय को कहीं भीतर तक स्पर्श करती है। अंतर्जाल के इस युग में युवा पीढ़ी का सबसे प्रिय मित्र है उनका लैपटॉप या मोबाइल। इस माध्यम की अच्छाइयों-बुराइयों की चर्चा छोड़ दें तो इस सच्चाई को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आज की पीढ़ी तक पहुँचना है और प्रभावशाली रूप से पहुँचना है तो सर्वाधिक सशक्त और आसान माध्यम नेट ही है।

इसी सोच के साथ हिंदी-विभाग की यह वेब पत्रिका सुगंधिका-प्रारंभ की गई थी। छात्राओं ने अति उत्साह से इसमें अपना सहयोग दिया। प्रत्यक्षम् किम् प्रमाणम्। पत्रिका का नया अंक आप सबके समक्ष है। आशा है सुगंधिका की भीनी भीनी सुगंध आप सबका मन मोह लेगी। शुभकामनाओं सहित-

डॉ गीता शर्मा

प्रभारी, हिंदी-विभाग

## सुगंधिका मेरी नज़र से..

सुगंधिका फिर नए कलेवर में उपस्थित है। हर बार सुगंधिका में कुछ अलग संदेश होता है कुछ अलग भाव होता है। नए भाव संवेदन को हर बार सुगंधिका बिना किसी संशोधन के, जस का तस प्रकाशित करती है, उद्देश्य केवल इतना है कि युवा मन की तरंगों को, उसके आक्रोश को, उसके स्वीकार और अस्वीकार के आधार को और उसमें उठने वाले अनगिनत प्रश्नों को अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराने का मौका मिले। जिससे चली आती और स्थापित सोच में एक अलग स्वर उनका भी शामिल हो। यूँ भी भविष्य की उंगली थामे बिना वर्तमान चल भी नहीं सकता है तो वहीं भविष्य को लोकोपयोगी होने के लिए वर्तमान का आधार चाहिए ही। इसी भाव के साथ प्रस्तुत है सुगंधिका।

हर बार की तरह इस बार भी सुगंधिका में कविताओं की संख्या अधिक है। पर हर कविता एक अलग मिजाज़ की है और यह मिजाज़ बना है छोटी उम्र की गहरी समझ से। कुछ न पढ़ें केवल इन कविताओं को ही पढ़ें तो लगता है जैसे एक उपन्यास पढ़ रहे हों। इस उपन्यास की शुरुआत होती है बीतते बचपन से। जो अपने बीतने के साथ बहुत कुछ ले गया है। छोड़ गया है तो केवल स्मृतियाँ जो एहसास कराती हैं कि ये मन कितना गहरा समंदर है! स्मृतियों का समंदर! इन्हीं समंदर सी गहरी स्मृतियों से बने हैं गहरे रिश्ते जो ताउम्र साथ निभाते हैं। फिर क़िरदारों के रूप में यहाँ उपस्थित होते हैं माँ, पिता, बेटियाँ, पत्नी और दोस्त। माँ और पिता के प्रति जो प्रेम है वह परंपरागत है पर बेटी यहाँ सामान्य हँसती-खिलखिलाती बेटी नहीं है। जीने की गुहार लगाती बेटी है। जीने की ज़बर्दस्त इच्छा से भरी बेटी है, जो अपने सपनों का आशियाना बनाना चाहती है। पर आशियाना बनाना इतना आसान भी कहाँ हैं? संघर्ष है, भ्रष्टाचार है। पर इस बेटी ने हार मानना कहाँ सीखा है बल्कि वो तो सीख देती है कि जीवन से हार मानना ठीक नहीं। यही बेटी पत्नी भी है जो एक ऐसी स्त्री के रूप में विकसित है जिसका स्त्रीत्व परंपरागत साँचे में गढ़ा हुआ नहीं है इसीलिए उसे परंपरागत स्त्रीवादी आदर्श स्वीकार्य नहीं हैं। यहाँ वह उन परंपरागत स्त्रीवादी उपमानों से पटे पड़े शास्त्रों को भी नकारती नज़र आती है। उसका स्वतंत्र उद्घोष है-

जब जब गरिमा पे संकट आए, दुराचार जब आँख दिखाए,

दुस्साहसी का साहस बढ़ जाए,, वो तुम्हें दबाए, तुम्हें डराए,

वस्तुतुल्य व्यवहार हो जब-जब,, सम्मान का संहार हो, तब-तब

तुम किसी पुरुष अवतारी के, इंतज़ार में मत रहना।

उम्मीद, ताक़त सपनों को हक़ीक़त में बदलने की जद्दोजहद और कभी न हार मानने की ज़िद से भरी ये कविताएं आपको आमंत्रित करती हैं इन्हें जीने के लिए।

सुगंधिका के अगले खंड में डायरी के कुछ पन्ने और कहानियाँ भी हैं, जहाँ आप ज़िंदगी के अलग अलग

पड़ावों की सैर का लुत्फ़ उठाते हैं, यहाँ कभी आप चकित होते हैं, कभी उदास होते हैं, कभी हँस पड़ते हैं और कभी आपको पता भी नहीं चलता और आपकी पलकों के किसी कोने में छिपा मोती अचानक से ढुलक पड़ता है।

हृदय है तो मस्तिष्क भी है। भावावेश है तो विचार का संतुलन भी है। इन दोनों के समुचित योग से ही जीवन संभव है। सुगंधिका में विभिन्न विषयों पर लिखे गए लेख जागरूक करते हैं और वर्तमान परिस्थितियों के प्रति एक विश्लेषणात्मक नज़रिया अपनाने का आग्रह भी करते हैं। यहाँ एक विमर्श वह है जहां मीडिया के स्वरूप, उसके बदलाव के क्षेत्र, ओ टी टी प्लेटफ़ॉर्म के जरिए उसकी कार्यप्रणाली पर विचार है, मीडिया द्वारा अनंत कृत्रिम छवियों के संजाल में स्त्रियों और बच्चों को मोहरे के समान इस्तेमाल करने की रणनीति का उद्घाटन है तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बहिष्कृत होने का दर्द झेलती इकाई के प्रश्नों और आक्षेपों से भरी बयानगी भी है। सुष्मिता बंदोपाध्याय के रूप में यहाँ एक ऐसी लेखिका का वृत्तान्त भी है जिसकी क़लम में कुछ ऐसी अदम्य क्षमता है जो बड़े से बड़े अत्याचारों के बीच भी लेखिका को झुकने नहीं देती फिर चाहे इन अत्याचारों की परिणति मृत्यु ही क्यों न हो। सांस्कृतिक विमर्श भी है यहाँ जिसमें बताया गया है कि त्योहार किसी भी संस्कृति का एक छोटा सा चिह्न होते हैं जो अपने आपमें न जाने कितने वृत्तान्त, कितनी कहानियाँ, कितने गीत समेटे हुए होते हैं। उन्हें जानते, पहचानते और उनसे पुनः परिचय स्थापित करते हुए उन्हें मनाना अपनी पूर्वज परंपरा से जुड़ना है, होली पर लिखा सुंदर लेख यही संदेश देता है।

इसी प्रकार कभी कभी लीक से हटकर भी पढ़ना और लिखना चाहिए। क्योंकि तभी यह पता चलता है कि हाशिया उतना भी हाशिया नहीं है, जितना कि हम उसे समझ लेने की भूल कर देते हैं। भगवानदास मोरवाल का उपन्यास रेत अपनी समीक्षा के रूप में पाठकों से यही आग्रह करता है।

इसके साथ ही इस बार सुगंधिका में कलाकार की कूची भी शामिल है, जिसे देख आप मंत्रमुग्ध भी होते हैं और आश्चर्यचकित भी।

यह तो रही सुगंधिका के पन्नों की बातें। पर सुगंधिका इस रूप में कभी न आ पाती यदि उसे अपने वरिष्ठ जनों का वरद हस्त न प्राप्त हुआ होता। विचार, ज्ञान और अनुभव प्रेरित उनका मार्गदर्शन सुगंधिका में समाया हुआ है। फिर चाहे वो आदरणीय प्राचार्या महोदया हों, विभाग प्रभारी हों या फिर हिन्दी विभाग की सेवानिवृत्त सदस्य आदरणीय आशा जोशी मैम और राधिका सिंह मैम हों, जिन्होंने सुगंधिका के आग्रह को स्वीकार करते हुए, अपनी रचनाओं से उसे समृद्ध किया। सभी को बहुत धन्यवाद।

धन्यवाद उन सभी रचनाकारों का भी जिन्होंने अपने अनुभवों को यहाँ साझा किया। सुगंधिका के सभी सदस्य जिनमें साथी अनुराग, यशी और कशिश भी शामिल हैं, उन्हें भी बहुत धन्यवाद।

सुगंधिका में केवल इतना ही नहीं है। यह तो एक परिचय मात्र है। वास्तविक यात्रा तो परिचय के बाद आरंभ होती है, तो इस यात्रा में आप सभी का सहर्ष स्वागत है....

डॉ विभा नायक

## मेरी क़लम से..

हमारे हिंदी विभाग की ई-पत्रिका 'सुगंधिका' का यह नवीन अंक आपके समक्ष है 'सुगंधिका' जैसा की नाम से ही स्पष्ट है खुशबू बिखेरने का काम करती है। हमारी ई-पत्रिका 'सुगंधिका' हम छात्राओं के लिए अपनी बात व विचार अभिव्यक्त करने का सशक्त मंच है। जहाँ हम अपने ज्ञान, कौशल, क्षमता व प्रतिभा को सबके सामने ला सकते हैं। मेरा सौभाग्य है कि इस बार मुझे छात्र संपादिका बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ जिसके लिए मैं डॉ.गीता शर्मा एवं डॉ.विभा नायक की हृदय से आभारी हूँ, जिनके कारण मुझे इस पत्रिका में काम करने का अवसर मिला। सुगंधिका में काम करना एक अलग ही अनुभव रहा, जिससे मैंने बहुत कुछ सीखा है। यह अनुभव ताउम्र मेरा मार्गदर्शन करता रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बार पुन: सभी का आभार।

यशी मिश्रा

# अनुक्रमणिका


शीर्षक पृष्ठ संख्या

## मन की क़लम से

- एक उम्मीद -भारती अग्रवाल 09
- बचपन -आयुषी 10
- बचपन का ज़माना -अंजना 11
- बेटियाँ -बरखा 12
- मेरी माँ, कैसे कह दूं?, एक ख्वाहिश -कशिश यादव 13-14
- पिता, पत्नी, ज़िंदगी -अनामिका 15-18
- कुछ नहीं होगा -सिमरन बानो 19
- भ्रष्टाचार, हिन्दी भाषा -राजरानी 20-21
- हर बार परीक्षा दे देकर -शिल्पी कुमारी 22
- हार गए तुम, आख़िर क्यों -शिविका वर्मा 24-26
- उसने बनाया एक इंसान -शिवांगी गुप्ता 27
- आशियाना -हिमानी 29
- कलयुग -यशी मिश्रा 30
- कोरोना वायरस -मंजू 31
- पन्ने ज़िंदगी के, मनुहार, ज़िंदगी एक डायरी मेरी ज़िंदगी की डिक्शनरी में, कहाँ है मंज़िल -डॉ. राधिका सिंह 32-36

## डायरी का पन्ना

- आख़िरी मुलाकात -नुज़हत बानो 37
- दादी आप कुछ नहीं जानती, चमकीली मुस्कान -डॉ. राधिका सिंह 39-42

## कहानी

- वक्त बदलता है -राजरानी 43

- क्या खोया, क्या पाया -नुज़हत बानो 45


## विचार और विमर्श


- भूमंडलीकरण और महिलाओं की स्थिति -डॉ साधना शर्मा 49
- सुष्मिता वंदोपाध्याय -डॉ गीता शर्मा 52
- फागुन के दिन चार, आई बसंत बहार -डॉ आशा जोशी 56
- भारतीय समाज में मीडिया का प्रभाव -डॉ अंजू जैन 59
- ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म के विनियमन की आवश्यकता - श्री अनुराग सिंह 62
- राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की भूमिका -राजरानी 65
- न पूरा पुरुष,न पूरी औरत, आधा अधूरा हूँ मैं -अंजलि कामत 72


## पुस्तक समीक्षा


- रेत उपन्यास की समीक्षा डॉ विभा नायक 75


## कलाकार की कूची से ..

## हिंदी विभाग द्वारा आयोजित साहित्यिक गतिविधियों की एक झलक

## एक उम्मीद

बिना पंख के उड़ने की  कोशिश जारी है

नहीं पता अब आगे क्या ? पर

धुंधली सी एक उम्मीद बाकी है

चलना है उस धुंधलाहट को मिटाने के लिए

उस  धुंधलाहट तक पहुँचना  अभी बाकी है

रुकना नहीं है अभी मुझे क्योंकि

जीवन से संघर्ष अभी जारी है

नहीं पता अब आगे क्या? पर

धुंधली सी एक उम्मीद बाकी है

बिना पंख के उड़ने की कोशिश जारी है

**भारती अग्रवाल, द्वितीय वर्ष, हिंदी विशेष**

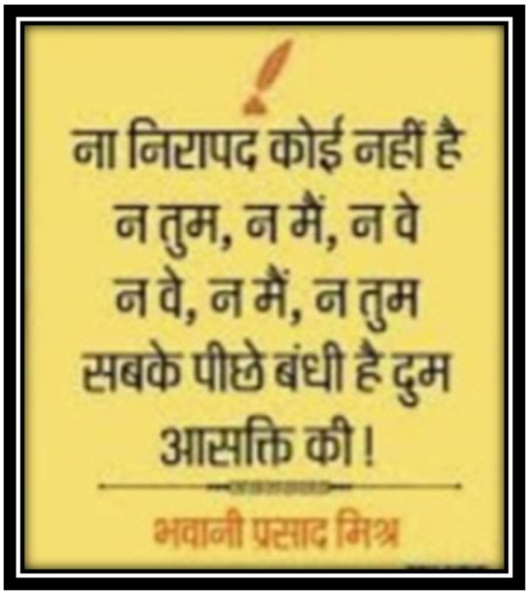

## बचपन

याद आता है वह बचपन

जब हम बस्तों में रखी किताबों का

बोझ उठाए घूमते थे।

याद आते हैं वे दोस्त,

जिनके साथ बिताये हैं हमने

खुशियों के हज़ारों पल

याद आते हैं वो सारे पल,

जो रह गए यादों के किसी कोने में,

ढूँढ न सकूं मैं वो पल,

कैसा था मेरा बचपन?

अब भी वह सब याद करूं तो हँस  पड़ती हूँ

याद करके अपने वह शरारती पल।

कैसे बताऊँ कैसे जताऊँ कैसा था बचपन।

न वे पल कभी लौट कर आएंगे,न वे दोस्त

कभी न वे बचपन की यादें लौट कर

आएंगी

याद आता है वह बचपन

याद आता है वह बचपन..

आयुषी, बी.ए प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष

# बचपन का ज़माना

एक बचपन का ज़माना था,

जिस में खुशियों का खज़ाना था...

चाहत चाँद को पाने की थी,

पर दिल तितली का दीवाना था...

खबर न थी सुबह की,

न शाम का ठिकाना था...

थक कर आना स्कूल से,

पर खेलने भी जाना था...

माँ की कहानी थी,

परियों का फ़साना था...

बारिश में कागज़ की नाव थी,

हर मौसम सुहाना था!!!

अंजना

बी. ए. प्रोग्राम

# बेटियाँ

चिड़ियों की तरह सी चहचहातीं हैं बेटियाँ

आँगन तुलसी बन घर को महकाती हैं बेटियाँ

हँसी दिलाकर सबका मन बहलाती हैं बेटियाँ

पायल की तरह छमछमाती हैं बेटियाँ

पानी सी साफ़ नज़र आती हैं बेटियाँ

क्यों देखते हो बुरी नज़र से इन्हें दुनिया वालो

किसी भी मकान को घर बनाती हैं बेटियाँ

बरखा, हिंदी विशेष, प्रथम वर्ष

# मेरी माँ

सब झूठे हैं यहाँ,

एक तेरा ही प्यार सच्चा है माँ।

सब चाहते हैं मतलब के लिए

एक तेरा प्यार बेमतलब है माँ।

दुनिया की इस नकली भीड़ में

एक तू ही है जिसने कभी साथ

छोड़ा नहीं मेरा चाहे गलती मेरी

हो कभी प्यार से तो कभी डांट से

समझाया एक तू ही है जिसने

मुझे बेमतलब चाहा है

दुनिया की इस नकली भीड़ में

एक तेरा ही प्यार सच्चा है माँ

एक तेरा ही प्यार सच्चा है।

कशिश यादव, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

## कैसे कह दूँ?

कैसे कह दूँ थक गई हूँ मैं ?

ना जाने कितने लोगों का हौसला हूँ मैं,

यूँ तो हर मोड़ पर मुश्किलें खड़ी ही रहेंगी,

मैं हार नहीं मानूँगी,

उन उम्मीदों की डोर कभी टूटने नहीं दूँगी

कैसे कह दूँ कि हार गई हूँ मैं?

ना जाने कितने लोगों का हौसला हूँ मैं

## एक ख्वाहिश

सुबह हो, बारिशों वाली,

और जाना हो कहीं दूर..

खाली सी सड़कें हों,

और सोया सा रास्ता,

हँसते से पेड़ हों, और ढूंढना हो, कोई नया पता...

चले और चले फ़क़त जीने इन रास्तों को,

जहाँ ये सफ़र हो... और मंज़िल हो लापता,,

ओस आती हो पैरों से लिपटने

और भिगो जाए टखनों तक दे जाती हो इक सिहरन,

ताउम्र न भूल पाने को..

बस चलती रहूँ और जियूं उन अहसासों को रात दिन,

जो देते हैं रवानियत..

कशिश यादव, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

# पिता

कल्पतरु की छाया है वो, मेरे सर का साया है वो।

उसके होने से ही, अपने जीवन में सुख है।

उसके ही कंधों पर, सारे घर का भार रखा है।

उसका ही हाथ पकड़, सबने मेला देखा है।

कल्पतरु की छाया है वो, मेरे सर का साया है वो।

धूप, बारिश, हो या सर्दी, बिना रुके वो काम करे।

उसके ही दम पर हम, अपने मन की बात करे।

पिता के जैसा न कोई हित,वो ही मेरा सच्चा मीत।

कल्पतरु की छाया है वो, मेरे सर का साया है वो।

अनामिका, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

# पत्नी

मैं चलती हूँ साथ तेरे, तेरी छाया बनके।

मैं रहती हूँ पास तेरे, तेरी आधी काया बनके।

तेरे साथ रहकर मैं सब सुख दुख यूँ ही बाँटूँ

तेरा साया बनके.....

मैं सूनी हूँ तेरे बिन, सूना ये संसार।

मैं बनू तेरी सहचरी, तुझ संग मेरा बंधन अपार।

तेरी संगिनी  बनके मैं उम्र तुझी संग काटूँ।

तेरा साया बनके.....

अनामिका, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

# ज़िंदगी

थोड़ी उलझी सी, थोड़ी सुलझी सी।

थोड़े आँसू आँखों में, होंठों पर थोड़ी सी हँसी।

कुछ रिश्ते हैं रूठे से, कुछ में स्नेह के मोती।

किताब के हर पन्ने जैसे, रोज़ बदलती है।

सवेरे उगती है सूरज सी, शाम चाँद सी ढलती है।

गैरों को खुश करने में, अपनों को भूल जाती है।

थोड़ी उलझी सी, थोड़ी सुलझी सी।

इसी का नाम है ज़िंदगी ॥

अनामिका, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

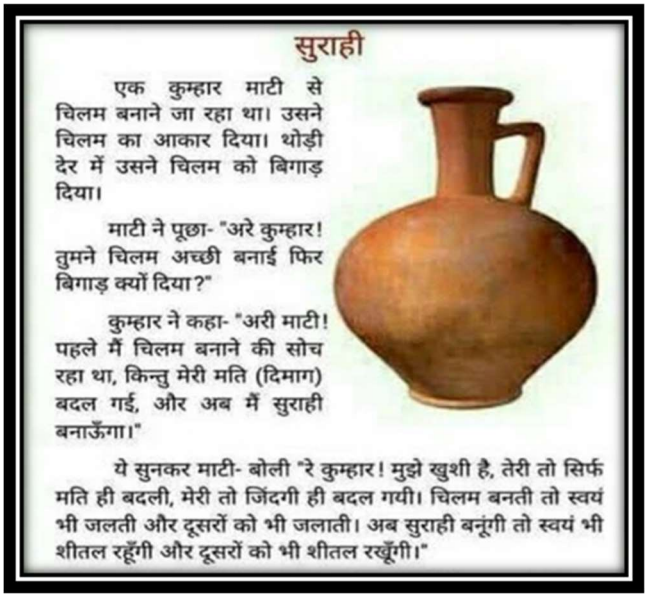

सुराही

एक कुम्हार माटी से चिलम बनाने जा रहा था। उसने चिलम का आकार दिया। थोड़ी देर में उसने चिलम को बिगाड़ दिया।

माटी ने पूछा- "अरे कुम्हार! तुमने चिलम अच्छी बनाई फिर बिगाड़ क्यों दिया?"

कुम्हार ने कहा- "अरी माटी! पहले मैं चिलम बनाने की सोच रहा था, किन्तु मेरी मति (दिमाग) बदल गई, और अब मैं सुराही बनाऊँगा।"

ये सुनकर माटी- बोली "रे कुम्हार! मुझे खुशी है, तेरी तो सिर्फ मति ही बदली, मेरी तो जिंदगी ही बदल गयी। चिलम बनती तो स्वयं भी जलती और दूसरों को भी जलाती। अब सुराही बनूंगी तो स्वयं भी शीतल रहूँगी और दूसरों को भी शीतल रखूँगी।"

## कुछ नहीं होगा

क्या होगा STATUS लगाने से

जो आज हुआ हैं, वो कल भी होगा

जब तक बदलेंगे हम नहीं,

तब तक कुछ नहीं होगा

देख कर IGNORE करना हम नहीं बदलेंगे,

तब तक हर रोज़ ये कहीं न-कहीं होगा

INSTAGRAM, FACEBOOK पर Post लगाने से हमारा फर्ज़ पूरा नहीं होगा

आवाज़ उठानी है तो उस वक्त उठाओ

जब ये सब आपके सामने होगा

पीछे तो सब कहते हैं

पर अब वक्त पर ही

कुछ करने और कहने से होगा

कुछ बदलने के लिए STATUS लगाने से कुछ नहीं होगा

वक़्त पर ही कुछ करने और

कहने से ही कुछ बदलाव होगा।

सिमरन बानो, हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष

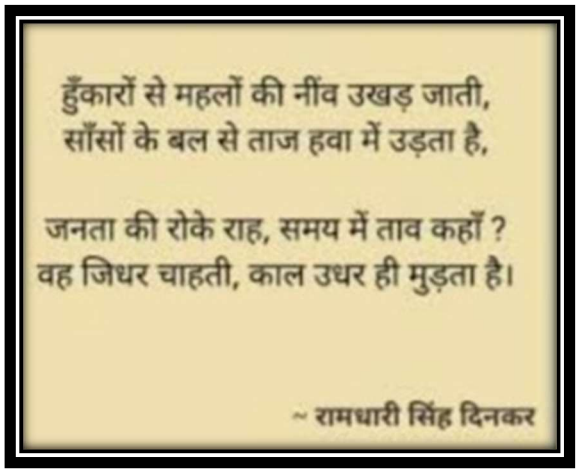

## भ्रष्टाचार

अमीर का हाथ पकड़ता है गरीब का सर झुकाता है

भेदभाव की खाई खोदकर उसमें दबाता हैं

सच्चे इंसान को भी लालच से लुभाता है

हाँ वह भ्रष्टाचार है।

जो देश को खोखला कर रहा है

लालचियों की झोली भर रहा है

धर्मियों से जो ना डर रहा है।

हाँ वह भ्रष्टाचार है।

मैच की फिक्सिंग हो या रेल की टिकटिंग

राजनेता की कुर्सी हो या विजेता की रेटिंग

यह हर दरवाज़े पर कर रहा हैं टिंग- टिंग

हाँ वह भ्रष्टाचार है।

जिसने पंक्तियों को तोड़ा है

कर्मियों का हाथ मरोड़ा है

जो देश के उज्ज्वल भविष्य में रोड़ा है

हाँ वह भ्रष्टाचार है।

यह सब का मन बहलाता है

इसके मोहजाल में फंसकर,कोई अडिग न

रह पाता है जो इसको अपनाता है वह भ्रष्टाचारी कहलाता है।

हाँ वह भ्रष्टाचार है।

राजरानी, तृतीय वर्ष, हिंदी विशेष

## हिन्दी भाषा

जन्म से लेकर मृत्यु तक जुड़ी है,

जो हमारी संवेदनाओं से,

जो हमारे संप्रेषण की कड़ी है।

हमारी मातृ भाषा हिंदी है।।

जो संस्कृति की मशाल बनी है,

हमारे अस्तित्व की ढाल बनी है

जो हमारे लिए एक त्यौहार बनी है।

हमारी मातृ भाषा हिंदी है।।

जो हमारी संस्कृति का अभिमान है

जिस भाषा से हमारी पहचान है

जिस भाषा में होते सारे काम हैं।

हमारी मातृ भाषा हिंदी है।।

जिसने शब्दों का दान दिया है,

अन्य भाषाओं का भी उपकार किया है

जिसने बोलियों का विस्तार किया है।

हमारी मातृ भाषा हिंदी है।।

राष्ट्र के माथे की बिंदी है हिंदी

तुलसी, कबीर, मीरा के कलम की स्याही है हिंदी

सूर के सागर की गागर और बिहारी की कविताई

हमारी मातृ भाषा हिंदी है।।

जो अन्य भाषाओं को स्वयं से न तोलती है

जो अपनेपन की मिश्री हमेशा घोलती है

जो हमारे विचारों के पट खोलती है

हमारी मातृ भाषा हिंदी है।।

**राजरानी, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष**

# हर बार परीक्षा दे देकर

हर बार परीक्षा दे देकर,
हर बार खुद को साबित कर,
तुम अपनों के ही हाथों से, तिरस्कार मत सहना।
अब प्रश्न करने से मत डरना।
नारी अब धीरज मत धरना।
जब जब गरिमा पे संकट आए
दुराचार जब आँख दिखाए।
दुस्साहसी का साहस बढ़ जाए,
वो तुम्हें दबाए, तुम्हें डराए।
वस्तु तुल्य व्यवहार हो जब-जब,
सम्मान का संहार हो तब तब
तुम किसी पुरुष अवतारी के,
इंतज़ार में मत रहना।
इस बार सुनो ऐ द्रौपदी,
तुम स्वयं अपने हित लड़ना।
नारी अब धीरज मत धरना।
बिना तुम्हारा पक्ष सुने,
कोई तुम पर प्रश्न उठाये जब
तुम कर्तव्य निभाती रहो सदा,
वो तुम्हें त्याग कर जाये जब,
अधिकारों के प्रति सुनो,
इस बार पत्थर मत बनना।
नाइंसाफी सुनो अहल्या,
धर्म समझ कर मत सहना।
नारी अब धीरज मत धरना।
स्वाभिमान पे आंच आए तो,
जीवन पे अगर बात आए तो
कोई समझे तुम्हें खिलौना,
नारी अब धीरज मत धरना।
तुम नज़र मिलाना,
साहस ना खोना, बिना रुके तुम उस शिखंडी को उसी समय दण्डित करना।
हे मंदोदरी, हे उर्मिला,
सुनो गांधारी, सुनो यशोधरा,
विपरीत हालातों को अब तुम,
कर्तव्य समझ मत स्वीकारो।
जो सही नहीं उन सीमाओं को,
मिटा दो अब, तुम धिक्कारो।
तुम सावित्री सम बनी रहोगी,
वो तुमको सती बनाएँगे।
तुम ज़रा बराबर हो जाओ,
बस आपत्ति जतलाएँगे।
वो तब भी ठुकराते थे,

अब भी शर्तों पर अपनाते हैं।

तुम तब भी तो चुपचाप ही थी,

अब भी खामोश कराते हैं।

तुम जननी हो तुमसे ही सृष्टि,

तुम सरस्वती, तुम से ही बुद्धि।

तुम गार्गी तुम मैत्रेयी,

तुम मणिकर्णिका आद्या, तुम ही शक्ति हो,

कहो भला फिर क्यों डरना?

नारी अब धीरज मत धरना।

तुम में ही है अमृत सरिता,

तुम में तूफान समुंदर भी,

वो पंख फैलाने ज़रूर देंगे,लेकिन पिंजरे के अंदर ही।

तुम स्वाभिमान के पर फैला अनंत गगन में उड़ जाना।

वो लाख फब्तियां कसा करेंगे,

सुनो! अब पीछे मत मुड़ना।

नारी अब धीरज मत धरना,

देखो! अब धीरज मत धरना।

शिल्पी कुमारी, बी. ए. प्रोग्राम, तृतीय वर्ष

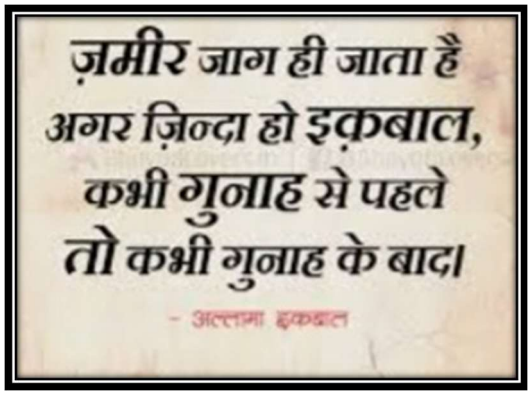

# ज़िन्दगी से बहुत जल्दी हार गए तुम

ज़िन्दगी के इस सफर में अपने सपनों को क्यों मार गए तुम।

ज़िन्दगी से बहुत जल्दी हार गए तुम।

हाँ माना हर किसी को सताती है ज़िन्दगी।

कभी तोड़ती है दिल तो कभी दुखाती है ज़िन्दगी।

पर ऐसा कौन सा दिल  है जो कभी टूटा नहीं

कौन है वो जो कभी किसी न किसी मोड़ पर ज़िन्दगी से

रूठा नहीं।

गिराने वाले तो हर मोड़ पर मिलेंगे तुम्हें, सताएँगे तुम्हें रुलाएँगे तुम्हें कभी खुद से ही खफा कर जाएंगे तुम्हें।

पर कभी ना कभी तो ये मोड़ हर एक की ज़िन्दगी में

आता है, जब इंसान खुद से भी जुदा हो जाता है।

उस मोड़ पर एक नई राह की तलाश तो करते अपनो पर

थोड़ा विश्वास तो करते।

क्यों उनकी नम आखों के मंज़र को नज़रअन्दाज़ कर गए तुम।

ज़िन्दगी के इस सफर में अपने सपनों को क्यों मार गए तुम।

ज़िन्दगी से बहुत जल्दी हार गए तुम

**शिविका वर्मा, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष**

# आखिर क्यों

दुनिया में आने से पहले ही आखिर क्यों

सांसों को हमारी मिटाया गया।

फिर देवी का रूप देकर आखिर क्यों

मंदिरों में हमें सजाया गया।

पहली किलकारी गूँजते ही आखिर क्यों

जंजीरों में हमें जकड़ाया गया।

फिर परियों का रूप देकर हमें आखिर क्यों

अफसानों में सजाया गया।

जो थे नहीं हम कभी वो आखिर क्यों हमें बनाया गया।

जीने की ख्वाहिश रखने पर डराया गया धमकाया गया।

खूबसूरती के बंधनों में बांधकर आखिर क्यों एक काँच की गुड़िया हमें बनाया गया

फिर हसीन चेहरा न होने पर आखिर क्यों हमें ठुकराया गया।

लड़ने की बजाए आखिर क्यों हालातों पर रोना हमें सिखाया गया।

फिर बेखौफ़ आवाज़ उठाने पर आखिर क्यों बेहया हमें बताया गया।

अरमानों का गला घोंटकर हमारे आखिर क्यों परदों के पीछे हमें छिपाया गया।

फिर बंद दरवाज़ों के पीछे आखिर क्यों ज़बरदस्ती पर्दा हटाया गया।

जिंदा होने पर भी आखिर क्यों बेजान हमें बनाया गया।

फिर बेटी का दर्जा देकर आखिर क्यों साजो-सामान की तरह हमें बस बोझ सा उठाया गया।

घर की लक्ष्मी कहकर आखिर क्यों दासी हमें बनाया गया।

बराबरी देना तो दूर पर आखिर क्यों हक को भी हमारे मिटाया गया।

प्यार करने पर आखिर क्यों बेगैरत हमें बताया गया।

फिर किस्सों में आखिर क्यों हीर को रांझे का बताया गया।

खुद के ख्वाब तोड़कर आखिर क्यों बड़ों की ज़िद का मान रखना हमें सिखाया गया।

और उसी मान के लिए अपनी मोहब्बत कुरबान की तो यारों की महफिल में आखिर क्यों बेवफा हमें बताया गया।

हमें हक देने के नाम पर आखिर क्यों आज तक बस शोर है मचाया गया।

न्याय देने के नाम पर आखिर क्यों बस इंतज़ार हमसे करवाया गया।

अपनी चाहत को चाहत और हमारी चाहत को आखिर क्यों घिनौना बताया गया।

ना कहने पर आखिर क्यों चेहरों पर तेज़ाब हमारे गिराया गया।

दहेज की भूख में आखिर क्यों ज़िंदा हमें जलाया गया।

हैवानों ने की जब हैवानियत की हदें पार, आखिर क्यों कसूर तब भी हमारा बताया गया।

नज़रों के कसूर को आखिर क्यों कपडों का कसूर बताया गया।

दम तोड़ने पर ही क्यों देश की बेटी बता मोमबत्तियों को जलाया गया।

आज सवालों में ही बस जिंदगी हमारी घूम गयी है।

इस दुनिया से हमारी उम्मीदें सारी टूट गयी हैं।

जिस दुनिया ने हमें हर पल बस सताया है,

मुस्कुराते हुए चेहरों को बार-बार रुलाया है,

जिस दुनिया ने हमें हर पल बस जीने की सज़ा दी है।

इकलौती जिंदगी हमारी जहन्नुम जैसी बना दी है।

उस दुनिया से हमें अब कोई आस नहीं है।

चारों तरफ बस शोर है पर फिर भी कोई साथ नहीं है।

जिस दुनिया के लिए माँ, बहन रिश्ते न होकर बस गाली है।

उस दुनिया से हम अब बंधन सारे तोड़ देंगे।

तुमसे न्याय पाने की हम आस अबसे छोड़ देंगें।

जिनको परियों सा कोमल कहते हो वो परियाँ ही अब आग बनेंगी।

उन तक बढने वाले हर हाथ को अब वही जलाकर राख करेंगी।

**शिविका वर्मा, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष**

## उसने बनाया एक इंसान ..

मानवता पर करके एहसान .....

उसने बनाया एक इंसान .....

अनजान था वो दुनिया की रीत से .....

उसने सजाया था उसे अनोखी प्रीत से

न था उसमे छल-कपट, न ही था वह हिन्दू या मुसलमान .....

वो तो था बस प्रेम पुजारी जो फिरता था करने सबका कल्याण ..... ।

मानवता पर करके एहसान .....

उसने बनाया एक इंसान .....।

बेग़ैरत नहीं, वो खुद्दार था .....

मेहनत से करता वो व्यापार था .....

मंसूबे नापाक़ नहीं थे उसके .....

दिलों को जीतना ही उसका कारोबार था

मिलकर चलता था वो सबके साथ .....

सभी के लिये उसके दिल में था प्यार .....

इबादत होती थी खुदा से कुदरत की .....

किसी के मन में न द्वेष न ही ख़्वार था .....।

फिर एक आँधी आयी .....

सबके दिलों में उसने दूरियाँ बनाई .....

फिर क्या था ....सब बहते चले गए उस तूफ़ान में ....एक अंधी दौड़ में,

खोखली संस्कृतियों के बनावटी संस्कार में,

जो बे-मुक़ाम थीं ....

बनाने लगे वो-बुनियाद मंज़िलें .....

रहने लगे एक अलग संसार में .....।

अब कुदरत से वो दूर हो गया ....

दौलत में वो चूर हो गया ....

भूल गया वो सच्ची मुहब्बत ....

बे-ईमानी अब उसका नूर हो गया ....

अब वो इंसाँ उड़ने लगा है ....

वो ज़मीं से ऊपर उठने लगा है .....

कुछ पीछे छूट जाने का उसे ग़म नहीं .....

वो बे-मक़ाम महल ढूंढने लगा है .....

मंसूबे अब उसके नापाक़ हो गये ....

देवदूत भी लगता है अब शैतान हो गये ....

नहीं रहे न्याय के चर्चे अब ....

अन्याय के कांड ही अब खिताब हो गये ....

सच की राह पर अब चलता नहीं कोई .....

झूठ के ही देखो सब फ़लसफ़े हो गये .....

सरेआम मर जाता है कोई .....

या फिर मार दिया जाता है ....

खड़े तमाशा देखते हैं लोग ....

कैसे भरा बाज़ार लूट लिया जाता है ....

ये वो मुल्क है साहब .....

जहाँ सरज़मीं को माँ कहा जाता है .....

पर देखिए आदमी की फ़ितरत कि माँ का
आँचल बीच बाज़ार फाड़ दिया जाता है ....

उछाली जाती है उसकी अस्मत .....

उसके साथ खेला जाता है .....

भरे बाज़ार ये तमाशा आजकल आम है

आसमां में बैठा वो खुदा सोच रहा है ....

उफ़ इंसान को ये क्या हो गया है ....

देख रहा है वो अपने हाथों को,

क्या उससे कुछ ग़लत हो गया है .....

एक सदा गूँजती है फ़िज़ाओं में ....

ग़लत तुम नहीं, वो इंसान है ....

जो कर रहा है तुम्हें बदनाम ....

बनना चाहता है वो सबसे बड़ा ....

इसलिए कर रहा है सब कुछ नीलाम .....।

मर रही है इंसानियत .....

सच दम तोड़ रहा है ....

हो रही झूठ की वाह-वाही चारों तरफ़ .....

अन्याय पैर पसार रहा है .....

मच रहा है हाहाकर ....

शिक्षा का पतन हो रहा है .....

विकास के नाम पर किया था बदलाव ....

देखो, विकसित अपना देश हो रहा है .....

अब खुदा भी कहता है, ऐ इंसान .....

ये तुझे क्या हो रहा है .....

मैंने तो फ़क़त एक इंसान बनाया था .....

तू करोड़ों हैवान बना रहा है .....

अमृत से भी पाक़ थी मेरी ये धरती .....

आज तेरा ही अक्स इसे ज़हर बना रहा है ...

कुदरत के कहर से बचना ....

अब नामुमकिन सा लगता है .....

क़यामत का समय अब नज़दीक लगता है

गुमां है तुमको बहुत अपने इंसान होने पर

पर ये इंसां अब नासूर लगता है ....

ख़ुदा की रहमत से बन गया था इंसान .....

और उससे पाक़ हुआ था सारा जहान .....

अब तारीफ़ क्या करें उस इंसान की ....

जिसने बना दिया सभी को हैवान ....

उन्होंने तो बनाया था बस इक इंसान .....

इंसान ने बना दिए करोड़ों हैवान .....।

मानवता पर करके एहसान .....

उन्होंने बनाया एक इंसान ....।

**शिवांगी गुप्ता "हसरत। एम. ए. हिंदी विशेष**

## आशियाना

दरिया के किनारे सा.
एक ठिकाना चाहिए।

खुदसे खुदको मिलवाने का
एक बहाना चाहिए।

जहाँ बेमतलब मुस्कुरा सकूँ,
बेबाक बतला सकूँ।
एक दुनिया हो छोटी सी.
जहाँ मुझमें मैं समां सकूँ।
जहाँ खुश रहने की इजाज़त
किसी और से न लेनी हो।
ना चार लोग, ना चार दीवारें,
मेरी ज़िंदगी केवल मेरी हो।
मनचाहे सपने देख सकूँ.
मनचाही मंज़िल पा सकूँ।
मेरा नाम, मेरी पहचान, बिन रोक-टोक बना सकूँ।
वो राह भले पथरीली हो, मैं मंज़िल समतल बनाऊँगी।

मेरे छोटे से आशियाने को,
अपने ख्वाबों से सजाऊंगी।

हिमानी, प्रायोगिक मनोविज्ञान, द्वितीय वर्ष

## कलयुग

तुम कहते हो ये कलयुग है

मैं कहती हूँ ये काल युग है

जहाँ लोग हैं लाखों सड़कों पे

पर असुरक्षा का मंजर है

मुख पर शहद के प्याले हैं

और दिल में सभी के खंजर हैं

संवेदना से भरे हुए हैं

पर जुल्म सभी पर ढाते हैं

जुर्म की कोई सीमा नहीं

खुद को रक्षक कहलवाते हैं

मानवता की सूरत में ये  इंसां बड़े भयंकर हैं

आदमी तो बस नाम रहा है पशु सभी के अन्दर है

तुम कहते हो ये कलयुग है

मैं कहती हूँ ये काल युग है

रिश्तों के जंजाल भी हैं लोग यहा बेहाल भी हैं

भीड़ बहुत है महफिल में पर तनहाई के काल भी हैं

मखमल पर सोने वाले कई मालामाल भी हैं
और दो वक्त की  लिए सड़कों पे बहुत
कंगाल भी हैं बुद्धिजीवी हैं कई यहाँ ज्ञान
बिना बदहाल भी हैं कहने को सब ठीक है
मगर धर्म, कर्म और ज़िंदगी को लेकर

मन में बहुत सवाल भी है

तुम कहते हो ये कलयुग है

मैं कहती हूँ ये काल युग है

आग लिए एक सीने में

अब लोग यहाँ पर चलते हैं

माचिस है बेकार वहाँ

जहाँ लोग एक-दूजे से जलते हैं

चेहरे पर विश्वास भरे हैं और बात बात पर छलते हैं

बनते तो दरिया दिल हैं पर दिल ही दिल में खलते हैं

ऐसे में रिश्ते तो बस दो-चार कदम ही चलते हैं

जब बैर, द्वेष, ईर्ष्या, खुद

लोगों के मन में पलते हैं

उम्मीदों  के सूरज भी

अब छिपते और निकलते हैं

तुम कहते हो ये कलयुग है मैं कहती हूँ ये काल युग है

यशी मिश्रा, हिंदी विशेष,

तृतीय वर्ष

# कोरोना वायरस

कोरोना को हराना है भारत को वायरस मुक्त बनाना है,

हाथ धोते जाना है सभी को यह पाठ पढ़ाना है ,

अपनी संस्कृति को अपनाएंगे हम,

सभी को नमस्ते का पाठ पढ़ाएंगे हम,

ना हारे हैं हम कभी किसी भी तूफान से ,

ना ही हारेंगे हम अभी इस कोरोना की रफ्तार से।

अपनों से दूर रहकर अपनों की सुरक्षा करेंगे हम,

स्वच्छता को अपनाकर ही कोरोना से जंग लड़ लेंगे हम

घर पर ही रहेंगे हम

कोरोना से न डरेंगे हम

अब तो इसे जाना है वापस फिर नहीं आना है

संकल्प यही हमारा है भारत को वायरस मुक्त बनाना है

मंजू, हिंदी विशेष, प्रथम वर्ष

## पन्ने ज़िंदगी के

पुराने कच्चे घरों में
रिश्ते बहुत पक्के थे ;
बड़े खुले आँगन में
दिल तंग नहीं,नज़दीक थे !
सादे कपड़ों कीसिलवटों में
महक थी अपनों की,
घर के बनाए भोजन में
मिठास थी भावों की !
खेल-खिलौनों के नाम पर
कपड़ों के बने गुड्डे-गुड़िया
और ख़ज़ाने के नाम पर
चींया,गोटी या कंचे की गोलियाँ !
गिल्ली-डंडा,आँख- मिचौली ,
छप्पन-छुपाई या पतंग-बाज़ी ;
ख़ुशियों का आधार बनी थी
गप्पें और चुहलबाज़ी !
बदला वक़्त ,जीवन
पुराना तो कुछ भी न रहा;
नये ज़माने के नये रंग ,
रहन-सहन नया और नये ढंग!
दिलों की नज़दीकियों में
अब दूरियाँ पलने लगीं ,
पक्के रिश्तों की दीवारों में
दरारें ख़ूब दिखने लगीं !
लिबास और ज़ायक़े के
दायरे भी बढ़ने लगे,
महक और मिठास के भी
मायने अब बदलने लगे !
दौलत की ठेल -पेल में
बदल गई रंगत ज़िंदगी की,
चकाचौंध की दौड़ में
पिछड़ गई ख़ुशबू ज़िंदगी की !
क्या खो दिया,क्या पा लिया
कैसे करें हिसाब इसका ?
खुली किताब के फड़फड़ाते पन्नों में
ढूँढा बहुत, मिला नहीं जवाब इसका

डॉ. राधिका सिंह

# मनुहार

नींद  नई नवेली-सी

लजाई शरमाई-सी

कुछ-कुछ सकुचाई-सी

पलकों के द्वार पर ठिठकती

फिर धीरे-धीरे आँखों में आ ही जाती है !

मन-मस्तिष्क के गुंजलक भरे गलियारों में

ताकती -झांकती और कुछ देर

लुका-छुपी-सी खेलती

अपने छुपने का ठिकाना ढूँढती है!

नहीं मिलने पर फिर चुपके -से

पलकों के बाहर निकल पड़ती है !

भावों के आलोड़न में डोल जाती है ,

विचारों की गहराई में डूब नहीं पाती है !

बार-बार अपने ही हाथों की थपकियाँ

अपनी ही सुरीली लोरियाँ

भला कब तक भुलावे में रखती !

कोई मनुहार नहीं मानती,

पलकों के द्वार पर ही बैठी

कुनमुनाती रह जाती नींद !

भोर की प्रतीक्षा में खो जाती है !

डॉ. राधिका सिंह

## ज़िंदगी : एक डायरी

जो कहना था कह दिया ,
सुनना था जो सुन लिया !
कहने की ख़बर से और
सुनने के असर से
लापरवाह है ये ज़िंदगी
एक अच्छी -खासी डायरी है ज़िंदगी !
न रुक सकती है
ना ही रोक सकती है कभी,
मुड़ती भी तो नहीं
न ही चाल बदल सकती है।
बस चलते वक़्त के साथ
चलती जाती है ज़िंदगी !
मुठ्ठी में बंद रेत-सी
फिसलती चली जाती है,
बंधन में भी किसी
भला कहाँ बँध पाती है !
छोटी -सी ही सही ! चलो
जी भर जी लेते हैं ज़िंदगी !!
सोच की कोई इंतेहा नहीं
चिंता नहीं परवाह नहीं
मोह -माया की ज़ंजीरें भी
मन को जकड़ पाती नहीं !
बेपरवाही के आलम ने
ख़ुशी से भर दी है ज़िंदगी
एक डायरी ही है ज़िंदगी !!

डॉ. राधिका सिंह

## मेरी ज़िंदगी की डिक्शनरी में

'डर' की कोई जगह नहीं,

क्योंकि मैंने हर ग़म से समझौता कर लिया है!

समझौता कर लिया उन हसरतों से

पूरी न हो सकीं जो जीवन की आपा-धापी में

दुख या मलाल भी नहीं रहा

क्योंकि उन्हें तवज्जो भी तो नहीं दिया !

न्योछावर कर सबकी ख़ुशियों में,

ढूँढती रही ख़ुशी अपनी भी !

अपने-पराये का भेद ही नहीं था ;

तभी ग़म और ख़ुशी का भाव भी समान था।

खोने-पाने के डर से बेख़ौफ़ होते ही

ज़िंदगी के मायने बदलते गए !

ऊपर उड़ती हसरतों की पतंगों की लंबी डोर

छोटी होती चली गई ;

समय की चरखी में समाती डोर का

कोई अस्तित्व भी नहीं रहा !

धर्म -कर्म की दुहाई में

मन की आवाज़ दबती गई !

खोने के लिये जब कुछ रहा ही नहीं

तो फिर डर क्या और किसका ?

ग़म और ख़ुशी एक हो गये तब

जीत किसकी और हार कैसी !

निर्द्वंद्व -निश्चिंत जीवन का

यह रूप भाने लगा है

तभी तो जीवन की डिक्शनरी से

'डर'शब्द ग़ायब हो गया है !

डॉ. राधिका सिंह

माला बिखर गई तो क्या है? खुद ही हल हो गई समस्या,

आँसू गर नीलाम हुए तो समझो पूरी हुई तपस्या।

## कहाँ है मंज़िल

धूप से तपते सिर पर

टोकरी की छाँव किये

मंज़िल की चाह में चले जा रहे ;

चले जा रहे

भूख से कुलबुलाते पेट को

कस कर कपड़े से बाँध ,

रोटी की आस में !

पिछली -अगली पीढ़ियों की

संचित- संयोजित सीढ़ियों को

बचाने की राह में चले जा रहे !

चलते रहेंगे आख़िर ये कब तक ?

कहाँ है मंज़िल ! कैसे मिलेगी !

कौन बता पायेगा कि

इन हादसों के शहर में

कब तक चलना होगा ?

आख़िर कब तक ?

डॉ. राधिका सिंह

# आख़िरी मुलाकात

अपेक्षा... बेटा कब तक सोती रहोगी सुबह हो, चुकी है और तुम अब तक सो रही हो? मम्मी ने खिड़की का पर्दा हटाते हुए कहा और आकर मेरे पास बैठ गई। मैं तो उठ चुकी थी बहुत पहले ही, लेकिन हिम्मत नहीं हुई कि बाहर जाकर सर्दी के मौसम की ठंडी हवा को महसूस कर सकूं। "उठ जा बेटा" मम्मी ने एक बार फिर कहा और मैं उठ ही गई। सामने बैठीं मम्मी मुस्कुरा रहीं थीं।

मैं रोज़ की तरह तैयार होकर शोर करते हुए, मस्ती से खुद को शॉल से लपेटे हुए कॉलेज के लिए निकली। 8:30 बज चुके थे। अभी भी घास गीली थी, सूरज की रौशनी ओस की बूंदों को और भी खूबसूरत बना रही थी। मैं अपनी ही धुन में आगे बढ़ गई और रेलवे स्टेशन पर अपनी ट्रेन का इंतज़ार करने लगी। कुछ देर बाद ट्रेन आ गई और मुझे आज ज्यादा भीड़ ना होने के कारण खिड़की के पास जगह मिल गई। धीरे-धीरे ट्रेन ने अपनी गति पकड़ी और रवाना हो गई मुसाफिरों को अपनी मंजिल तक पहुंचाने के लिए।

आज बहुत खास दिन था। कॉलेज का आखिरी दिन। देखते ही देखते तीन साल कैसे बीत गए पता ही नहीं चला। दोस्तों के साथ की गई मस्ती, क्लास बंक करना, प्रोफेसर की डांट और न जाने कितना कुछ... आज शायद सब खत्म हो जाएगा। दिलशाद के साथ मुलाकात का यह सफर भी खत्म हो जाएगा। दिलशाद... मेरा सबसे प्यारा दोस्त। मेरी पहली मुलाकात दिलशाद से कॉलेज की लाइब्रेरी में हुई थी। किसी किताब पर बहस करते हुए। लेकिन मुझसे कोई जीत थोड़ी सकता है। मैंने भी बिना सॉरी बुलवाए उसे जाने नहीं दिया था। जाने भी कैसे देती परेशान करने का कोई भी मौका छोड़ती ही कहां हूं, मैं जोर से हंसने लगी तभी मैंने देखा ट्रेन के सभी पैसेंजर मुझे ही देख रहे हैं। मैंने अपनी भावनाओं को रोका और बाहर का ज़ारा देखने लगी। ओस की चादर ओढ़े हुए यह जमीन बहुत खूबसूरत लग रही थी। भागते हुए पेड़ और भी ज्यादा रोमांचक लग रहे थे। धीरे-धीरे कोहरा छट रहा था और सूरज की रौशनी वातावरण को चमकीला बना रही थी।

आज कॉलेज का माहौल सबसे अलग था। सभी के चेहरों पर खुशी नज़र आ रही थी। लेकिन मेरी नज़र तो दिलशाद को ढूंढ रही थी। मैं अपनी सहेलियों के साथ कॉलेज के प्रोग्राम को देखने लगी और बहुत सारी मस्ती की। कब शाम हुई, पता ही नहीं चला लेकिन दिलशाद कहीं भी नज़र नहीं आया।

कॉलेज का प्रोग्राम खत्म होने के बाद -सभी की आंखों में पानी था, एक दूसरे को न भूलने के वादे भी किए जा रहे थे... तभी मुझे पीछे से एक आवाज़ आई..... अपेक्षा... मैंने पीछे मुड़कर देखा दिलशाद था। भागता हुआ आया और मेरे बालों को खींचते हुए कहता है, कहां थी अब तक? सारा दिन नज़र नहीं आई? पता भी है कोना-कोना ढूंढ लिया और तुम अब मिली हो। मैंने कुछ नहीं कहा और आगे बढ़ गई तभी एक और आवाज़ आई, बहुत धीमी..... सॉरी। दिलशाद कान पकड़े हुए माफी मांग रहा था। मुझसे बिना हंसे नहीं रहा गया और फिर मैं ज़ोर से हंस पड़ी और डांटते हुए कहा- जाओ माफ किया तुम्हें। आज कॉलेज का आखिरी दिन था और हम दोनों अब खामोशी से आगे बढ़ते जा रहे थे। दोनों ही जानते थे अपनी 'आखिरी मुलाकात' को फिर भी अपने कदम धीरे-धीरे बढ़ाए जा रहे थे। सामने मोड़ पर दोनों को अपने अपने रास्तों पर जाना था जो शायद उनकी अलग अलग मंजिल तक जाती थी। अपेक्षा और दिलशाद दोनों की आंखों में पानी था अपनी 'आखिरी मुलाकात' का दोनों ने फिर से इसी मोड़ पर मिलने का वादा किया और बढ़ गए अपनी मंज़िल की तरफ आंखों में पानी और चेहरे पर मुस्कुराहट लिए।

नुज़हत बानो

## —दादी ! आप कुछ नहीं जानती—-

‘हैलो दादी !कैसे हैं आप और बाबा ? काम वाली बाई नहीं आती, आपको सब करना पड़ता है न?’ फ़ोन करते ही अनन्या की मीठी आवाज़ सुनाई दी। दादी गद्गद् हो गईं। पोती को कितनी चिंता रहती है हमारी !जवाब दे ही रही थी -हाँ बेटा हम एकदम ठीक हैं -अनन्या फिर बोल पड़ी -दादी आप लोग कहीं बाहर तो नहीं जाते हैं न ! गेट से बाहर भी मत निकलना। बेटा गेट के बाहर तो निकलना ही पड़ेगा न फल -सब्ज़ी लेने के लिये !

नहीं-नहीं दादी ! सब कुछ ऑनलाइन मिलता है। दूध ,ग्रॉसरी ,फल ,सब्ज़ी ऑनलाइन मँगा लीजिये नहीं तो पापा से कह दीजिये वे ऑर्डर कर देंगे !

अरे बेटा ! सब कुछ गेट के बाहर मिल जाता है ! अपनी पसंद और ज़रूरत की सब्ज़ी -फल मैं आराम से ले लेती हूँ। दूध घर पर दे जाता है और ग्रॉसरी के लिये फ़ोन कर देती हूँ।

हम आराम से हैं बेटा, चिंता मत करना।

‘दादी सब्ज़ी लेते समय मास्क लगा कर रखती हैं न ! बिना मास्क के बाहर मत निकलना।

दादी का धैर्य जवाब दे रहा था । ‘क्या मुझे नहीं मालूम -क्या करना है क्या नहीं !’

लॉकडाउन के शुरु में दुनिया भर के एहतियात बरतने और सारा सामान भरकर रखने की बातें; पता नहीं कब तक ऐसे चलेगा। कम से कम चार महीने का सामान तो घर में होना ही चाहिये। कभी बेटियों का ऑर्डर किया सामान, कभी बेटे का। कोरोना को कोसती, सामान सहेजती और खीझती जाती। कहाँ रखूँ सब? कैसे सँभालूँ !सारा कुछ अकेले करना है ! तंग आ कर बच्चों को सख़्ती से मना कर दिया। कह दिया -जब जिस चीज़ की ज़रूरत होगी बता दूँगी ; मेरे ऊपर तरस खाओ, मेहरबानी करो !

बेटा-बेटियों को तो समझा दिया पर पोती माने तब न ! तीसरी पीढ़ी - चार क़दम आगे ! उसके उपदेश के उत्तर में जब कहा - हाँ -हाँ मैं भी जानती हूँ बच्चे ! सब्ज़ियों को दो घंटे मीठे सोडे के पानी में भिगो देती हूँ!फिर कम से कम तीन बार फ़्रेश वॉटर में तीन बार धोकर सुखाती हूँ फिर फ्रिज में रखती हूँ अब और क्या करूँ ?

दादी की बात का जवाब अनन्या ने बड़ी तल्ख़ी से दिया -‘दादी आप कुछ नहीं जानतीं !आपको तो ये भी नहीं पता नहीं कि कोरोना कितना डेंजरस है। किसी पॉली बैग के ऊपर ही चिपका होगा, किसी के हाथ से कुछ लेते- देते वो आप तक पहुँच सकता है !कुछ हो जायेगा तो आप और बाबा कैसे मैनेज करेंगे ?’

पंद्रह साल की अनन्या कहती जा रही है और दादी फ़ोन कान पर लगाए सोचती जा रही हैं — —'चालीस सालों तक कॉलेज में पढ़ाया ! क्लास में कोई चूँ भी नहीं कर पाता था !आंखें और कान मैडम की तरफ़ ही लगे रहते थे l कहीं कोई टोका-टाकी नहीं ! आज पोती कहती है -आप कुछ नहीं जानती !'M .A , Ph.D सब बेकार l क्या ऐसी स्थिति भी आती है ! हमने भी तो ये अवस्थायें पार की हैं ! याद नहीं आता कि कभी किसी बड़े बुजुर्ग के आगे इतनी बेबाक़ी से बोल पाये हैं l

पंद्रह साल की ही उम्र थी !खो-खो की स्टेट लेवेल की टीम में सेलेक्शन हो गया था l पूरे हैदराबाद से तेरह बच्चों में छठा नाम था !बाहर जितनी ख़ुशी थी भीतर उससे ज़्यादा डर !घर वाले न माने तो ? और वही हुआ जिसका डर था l पिता जी नौकरी के सिलसिले में बाहर रहते थे। घर में चाचा जी की हुकूमत चलती थी। चाचा जी ने साफ़ मना कर दिया - कहीं नहीं जाना है ! नेशनल टूर्नामेंट, इंटर स्टेट मैच ,जबलपुर ! दस दिन के लिये घर से बाहर रहना मज़ाक़ है ?पढाई का नुक़सान अलग से ! कुछ नहीं बोल पाई बस रोती रही l भाग्य अच्छे थे। पिता जी कुछ दिनों के लिये छुट्टी पर घर आये थे। उन्हें इस बात का ध्यान था कि पढ़ाई के साथ खेल भी ज़रूरी है ;फिर ऐसा अवसर तो सौभाग्य से मिलता है ! मनाने पर चाचा जी भी मान गये l ज़ुबान तो बंद ही थी पर जबलपुर जाने की आज्ञा मिल गई !

कॉलेज की पढ़ाई —कभी हाँ ,कभी ना। क्या करना है ज़्यादा पढ़ कर -नौकरी थोड़े ही करनी है ! अच्छा चलो !योग्य वर मिलने तक पढ़ लो !फिर योग्य साथी की कसौटी भी तो घर वालों के पास थी lकभी मुँह नहीं खोल पाई ! भाग्य अच्छा था सब कुछ मिला ! आगे पढ़ाई का अवसर ,फिर कॉलेज की नौकरी ! कभी कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी l

अब कोरोना ने सभी को डॉक्टर -वैद्य -हकीम बना दिया —तुलसी ,अदरक ,हल्दी कालीमिर्च ,दालचीनी का काढ़ा ; हल्दी वाला दूध , गिलोय, ऐलोवेरा, करी पत्ता का जूस और पता नहीं क्या -क्या !कोरोना ने सबको ज्ञानी - उपदेशक बना दिया!सोशल मीडिया की तो कुछ कहो मत। सब देख -सुन कर यही लगता है कि हम बेवक़ूफ़ और बुद्धु ही रह गये !पंद्रह -सोलह की उम्र में ना सही पर अब तक तो बहुत कुछ जान लेना चाहिये था ! और कुछ ना सही पर ज़ोर दे कर अपनी बात कहना तो आ ही जाना चाहिये था l कभी अहसास भी नहीं हुआ lआज पोती के कहने पर कि 'दादी आप कुछ नहीं जानती - जानने का प्रयत्न करें !!

डॉ राधिका सिंह

## —-चमकीली मुस्कान ——

कोरोना -काल के लॉक डाउन में काम करते -करते जब कमर और कलाई जवाब देने लगे तब काम वाली बाई को बुलाना ज़रूरी लगने लगा। दर्द शायद इसलिये भी ज़्यादा महसूस होने लगा क्योंकि अड़ोस-पड़ोस में सभी मैडम रिलैक्स दिखने लगीं। सुबह टहलने और शाम को बैंड मिंटन खेलती दिखाई देने लगीं -बेशक मास्क लगा कर !

धीरे-धीरे लगने लगा -क्या मैं ही अनोखी हूँ ,

या मैं कुछ ज़्यादा ही डरती हूँ कोरोना से ?

नहीं -ऐसी बात नहीं। मैं ख़ुद तो नहीं डरती, हमारे बच्चे कुछ ज़्यादा ही फ़िक्रमंद रहते हैं — कोई आये नहीं, कहीं जाओ नहीं !ये नहीं -वो नहीं। बस मास्क-सैनिटाइज़र ब्लॉ .ब्लॉ सुनते सुनते ऊब गई थी।

एक तरफ़ पूरे काम करके थको ऊपर से उपदेश सुनों ; दूसरी तरफ़ काम करके बीमार पड़ जाओ काम पापा संभाल लेंगे !

बहुत सोचा !दोनों बच्चों को समझाया, सारी सावधानी बरतने की बात करके उन्हें विश्वास में लिया और काम वाली बाई को बुला लिया !

पूरे साढ़े तीन महीने बाद को घर में काम करते देखना कुछ अजीब लग रहा था।

अपने काम करने की इतनी आदत पड़ गई थी कि हाथ बेचैन होने लगे !दर्द भूल कर झाड़ू पकड़ने लगे ! बाई बरतन माँजना छोड़ कर हैरत से देखने लगी -बोली-मैडम मैं कर लूँगी झाड़ू पोंछा सब !अब आप आराम करो !उसकी बातों से होश आया !

इतनी मशक्कत से तो उसे बुलाया फिर ये क्या करने लगी मैं !

मैं जो बात कहने जा रही थी वो ये है कि अब तक मैं प्रिया (बाई) को लॉकडाउन के समय में सिर्फ़ १५००/रु महीने दे रही थी। सोच सिर्फ़ यही थी कि काम तो मैं करूँ और पैसे वो ले जाये !ये भी पता नहीं कि लॉकडाउन खुलने के बाद भी वो आये न आये !वह तो महीने में कभी फ़ोन करती -मैडम मैं सेलरी लेने आ जाऊँ! पति के साथ मोटर साइकिल पर आ जाती, गेट पर चौकीदार से बता देती —सेलरी देने को बुलाया है ! गेट से फ़ोन आ जाता रुपये तैयार रहते - १५०० / लेकर वह चुपचाप चली जाती। हाँ जाते-जाते कह देती -जब बुलाना हो फ़ोन कर देना। मैं उसकी आधी सेलरी देती हुई कुढ़ती लेकिन प्रिया कुछ नहीं कहती !

पहली तारीख़ से प्रिया ने अपना काम शुरु कर दिया।आते ही बाहर के नल पर साबुन से अच्छी तरह हाथ-पैर धो लेती। मेरा दिया हुआ गाउन पहन, मास्क लगाकर पूरे काम कर लेती !जाते समय गाउन धोकर पीछे के आँगन में सुखने के लिये डाल देती !

३ तारीख़ को मैं उसे पिछले तीन महीनों के बाक़ी पैसे देने लगी तो वह मुझे हैरानी से देखते हुये पूछ बैठी - ये कैसे पैसे मैडम ?पिछले तीन महीने के बाक़ी !सुनते ही उसकी आँखों में जो चमक उभरी उससे मैं भीतर तक आर्द्र हो उठी !उसे शायद उम्मीद नहीं थी। उसकी सरल आँखों की चमक और भोली मुस्कान के आगे मुझे अपने ५०००/रु और अपनी सोच एकदम छोटी और तुच्छ लगने लगी !!

डॉ. राधिका सिंह

## वक्त बदलता है..

समय के इसी दौर में कुछ लोग हमसे मिलते हैं तो कुछ पुराने बिछड़ जाते हैं। आज मुझे पूरे 5 साल हो गए हैं अपनी जिंदगी के सबसे खास इंसान से बिछड़े हुए। जिसके हर ज़िक्र में मेरी आंखें नम हो जाती हैं वक्त के साथ मेरे भाव भले ही बदल गए हो पर मुझे आज भी एक दोस्त की तरह उसकी फिक्र है। वह सबसे अलग था, हमेशा खुद में ही खोया रहता, सुर ताल मिलाते रहता। वो जब गाना गाता तो मन करता उसे सुनती रहूँ , निहारती रहूँ। एक अजीब सा जादू था उसकी आवाज़ में, मोह लेने वाला। मैं हमेशा उसे गाना सुनाने की ज़िद करती। वह गाना गाता था और मैं उसे एकटक निहारती रहती। उसका अक्स मेरी आंखों से होता हुआ दिल में उतर जाता।

उसे डूबता हुआ सूरज पसंद था और मुझे... आसमान से गिरती बर्फ, पर न ही वो कभी सांझ के रंगों को संजो पाया और न ही मैं कभी बर्फ के फाहों को इकट्ठा कर पाई। खूबसूरत चीज़ें होती ही ऐसी हैं क्षणिक, पल भर भी उन्हें कैद नहीं किया जा सकता, बस जिया जा सकता है। जी लेने के बाद शायद वह चीज़ें कोयल बन जाती होंगी और यादों के पेड़ पर बैठकर ऐसे गीत गाती होंगी जो कभी खुश करता है तो कभी बहुत उदास भी।

लड़के तो बहुत से दोस्त थे उसके पर लड़कियों में सिर्फ मैं। इसलिए मुझे लगता था कि मैं कुछ खास हूँ उसके लिए। शायद वह भी मुझे पसंद करता था। उसकी निश्छल आंखें, सबके लिए प्यार से भरा दिल, उसे देख कर ऐसा लगता था कि कोई इतना अच्छा कैसे हो सकता है! मैंने सोचा वो नहीं कहेगा तो मैं ही कह दूँ। मैंने एक कार्ड में लिख कर उसकी किताब में रख दिया। अगली सुबह वो मुझसे नज़रें चुराए क्लास में बैठ गया और मुझे नजरअंदाज़ करके चला गया। मैंने उसे पूरे स्कूल में ढूंढा पर वह लाइब्रेरी में मिला।

मैंने कहा - आशुतोष (वो असहज हो गया) हाँ प्राची बोलो (उसने असहजता से कहा) तुमने मेरा कार्ड देखा? हाँ हाँ प्राची देखा (उसने गुस्से से कहा) नाराज हो मुझसे, मैंने कहा।

प्राची जो तुम सोच रही हो वैसा नहीं हो सकता।

आशुतोष तुम मुझे पसंद नहीं करते ?(मैंने रूंधे हुए स्वर में कहा)

प्राची मैं तुम्हें कैसे समझाऊं ?

मुझे तुम में कोई दिलचस्पी नहीं है,मुझे तो किसी भी लड़की में कोई इंट्रेस्ट नहीं है।

मतलब क्या तुम.....

हाँ-हाँ प्राची, जिस शब्द को तुम अपनी जुबान पर नहीं ला पा रही हो, वो मेरी ज़िंदगी का सच है।

मैं निशब्द हो गई...

हमारे बीच सिर्फ खामोशी थी। मेरे अंदर कुछ टूट कर बिखर सा गया था, जो आज भी चुभता है।

अगले दिन जब वह स्कूल आया तो सब बच्चे उसे अजीब तरह से देख रहे थे बातें कर रहे थे। शायद किसी ने लाइब्रेरी में हमारी बातें सुन ली थीं। क्लास में एक लड़की ने धीरे से कहा आशुतोष गे है। उस दिन के बाद उसने स्कूल छोड़ दिया।

आज अचानक इतने सालों बाद मिले उसे पहले जैसा खुश देख कर अच्छा लग रहा था, पर सोच रही थी कि कहीं ये खुशी दिखावटी तो नहीं। मैंने झिझकते हुए पूछा - आशुतोष अब तुम ठीक हो? स्कूल में जो हुआ...वो असहज हो गया ऐसा लग रहा था कि मैंने उसका कोई पुराना लेकिन हरा ज़ख्म कुरेद दिया हो।

वैसे प्राची अच्छा ही हुआ सबने मेरे सच को मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया अब मैं उससे भागता नहीं। पहले मेरे अंदर बार-बार एक सवाल चोट करता था कि मैं ऐसा क्यों हूँ? पर फिर मैंने महसूस किया कि प्रकृति की सारी चीजें, सारे रंग एक से तो नहीं होते उसकी बातों से मुझे सुकून मिला।

प्राची अगले हफ्ते मेरा कॉन्सर्ट है तुम आओगी? उसने मुस्कुराते हुए कहा। हाँ जरूर तुम्हारा गाना कैसे मिस कर सकती हूँ, मैंने कहा था ना कि तुम एक दिन जरूर सिंगर बनोगे मैंने पहले की तरह कहा चलो अब मुझे गाना सुनाओ और पहले की तरह खुशियों के फूल खिलने लगे।

**राजरानी, हिंदी**

**विशेष, तृतीय वर्ष**

## क्या खोया, क्या पाया...

आज मैं उम्र के उस पड़ाव में हूँ जहाँ रिश्तों ने कभी मुझे समझने का प्रयास नहीं किया और जिन्होंने भी समझा वह रिश्तों से कहीं ज्यादा बढ़कर निकले। वो किसी भी रूप में मौजूद हो सकते हैं- माँ, बहन, नानी, चाची, दादी, बुआ या फिर बेटी..  हां..पक्का बेटी...!

बेटी ही तो थी मेरी ,जिसने मेरे भीतर भरे हुए जंजाल को निकाला था। जिसमें सभी लोगों ने अपने- अपने तरीके से ज़ख्मों के गहरे रंग भरे थे।

.....जब मैं 26या 27 की थी,तब मेरी जिंदगी में एक नया रंग आया... रंगोली ... छोटी सी प्यारी बच्ची, हाथ मानो कबूतर के छोटे-छोटे मुलायम पंख... मानो अभी ही अंडो से टूट कर निकले हो। होंठ ऐसे लाल जैसे कि दुनिया के सबसे नए रंगों का नया रंग गुलाबी... इसी बात से प्रेरित होकर मैंने उसका नाम रंगोली रख दिया था। वो इस दुनिया के सभी रंगों के रंग की समावेश थी। मेरी दुनिया में भी शायद रंग भरने आई थी, छोटी सी परी।

.....रंगोली का 20वां जन्मदिन आने वाला था, हालांकि मैं नहीं जानती थी उसके जन्म की सही तारीख कौन सी रही होगी। मुझे तो वह 12 मार्च की तारीख ही याद है जब वह मुझे मिली थी।  क्या कहूं उस रात को...भयानक सपना या मेरी ज़िन्दगी में आने वाली सबसे खूबसूरत रौशनी...उस दिन जब मैं टूट कर अपनी मायूसी में खोई हुई अपने सवालों का जवाब ढूंढ रही थी, क्यों छोड़ा उसने, क्या सब बदल गया था,या अब मैं उसे अच्छी नहीं लगती थी,क्या बदल गया था हमारे बीच? सबकुछ तो पहले जैसा था, मैं और वो हमारा प्यार! फिर अचानक ऐसा क्यों...?पिछले तीन महीनों से हमारी बात नहीं हुई है,ऐसी कौन सी गलतफहमी हुई कि हम इतने दूर हो गए! तुमने मेरे किसी सवाल का जवाब नहीं दिया ना फोन किया और ना ही फोन उठाया... औरआज जब मैं तुमसे मिलने आई तो तुमने मिलना भी ज़रूरी नहीं समझा...क्यों...क्यों अनुज?मेरे दिल में बहुत से सवाल उठ रहे है, जिनका जवाब मिलना कम और बोझ ज़्यादा लग रहे हैं,इसी कशमकश में मैं वापस लौट आई थीअपने घर।  तभी किसी छोटे बच्चे की रोने की आवाज़ सुनाई दी,मैं धीरे धीरे उस आवाज़ की ओर बढ़ने लगी। पास जाकर देखा तो वहां एक छोटी सी, प्यारी सी बच्ची अपनी ज़िन्दगी के लिए लड़ रही थी। सड़क के किनारे किसी मैले कपड़ों के कतरन में लिपटी हुई बच्ची,उन्हीं कतरनों में फंसी हुई, उलझी हुई कभी हंसती तो कभी रोती, मैंने बच्ची को झट से उठा लिया। सोच रही थी कि क्यों इंसान अपने बच्चे को बोझ समझते हैं और छोड़ देते हैं मरने के लिए!

मैं उस बच्ची को अपने साथ घर ले आई थी। घर आने पर सब कुछ बिगड़ा हुआ मिला,घर वाले अनुज के बारे में जान चुके थे,और किसी के सवालों का जवाब न देना, मेरे साथ चार से पांच महीने की बच्ची(रंगोली) का होना, इस सबके बाद सबका गुस्सा होना लाज़मी था। घर वालों ने बहुत कहा, बच्ची को किसी NGO या अनाथ आश्रम में छोड़ आओ,लेकिन मैंने किसी की एक ना सुनी और उस बच्ची को अपने साथ रखने का फैसला कर लिया। मैं रंगोली को खुद से दूर करना नहीं चाहती थी, क्योंकि उसने निराशा के वक्त अपनी मुस्कान से मेरे चेहरे पर मुस्कान की एक बौछार छोड़ी थी।

न चाहना और चाहना कहाँ अपने हाथ में होता है। जिसको चाहा वो मिला नहीं लेकिन जो मिला, बिना चाहे बहुत अच्छा मिला। इस फैसले से मेरे घर वाले सहमत नहीं थे,तो रिश्तेदारों से उम्मीद रखना गैर ज़रूरी था। मैं अपने पैरों पर खड़ी थी स्वतंत्र थी,अपने फैसले में किसी प्रक्रार की आर्थिक सहयोग की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। कुछ इस तरह ज़िन्दगी के बीस साल बीत गए। यह सब सोचते हुए मैं अपने अतीत से बाहर आई और रंगोली को फोन किया...कहाँ हो बेटा?

आ रही हूं मां, ट्रैफिक बहुत है वहीं फंसी हूं। अच्छा बेटा ठीक से स्कूटी चला ना,यह कह कर मैंने फोन रख दिया और उसके आने का इंतजार करने लगी।तमाम इंतजाम करने लगी उसकी ड्रेस,गिफ्ट,पसंद का खाना सब कुछ ख़ास बना देना चाह रही थी। थोड़ी देर में रंगोली आ गई ...कैसा रहा बेटा तुम्हारा कॉलेज? कुछ ख़ास नहीं मम्मा वहीं रोज़ को तरह पकाऊ भाषण जिसने न कोई मज़ा ना ही कोई मनोरंजन बहुत ही सड़ा मुंह बना कर रंगोली ने एक सांस में कह कर अपने कमरे में चली गई।

जब तक तुम अपने विषय से प्यार नहीं करोगी,तब तक समझ पाना मुश्किल है रंगु,एक बार अपने विषय से प्यार करके तो देखो फिर तुम्हें मज़ा आने लगेगा। अरे वाह तुम भी बिल्कुल सर जैसी बातें करती हो,मालूम है?आज सर ने भी बिल्कुल यही बात की...रंगोली ने हैरान होते हुए कहा। लगता है मेरे चेहरे पर लिखा हुआ हैं ऐसा...रंगोली ने कहा और हंसने लगी। अच्छी बात है। लेकिन तुम समझती कहां हो अभी भी बच्चों जैसी बातें करती हो... पगली। मां तुम दोनों का तरीका बिल्कुल एक जैसा है,गुस्सा करने का और समझाने का भी।

अच्छा इस बार मेरे बर्थडे पर कौन कौन होगा? कौन कौन से क्या मतलब बेटा,हमेशा की तरह तुम और मैं ...मैंने मुस्कुराते हुए कहा और अपना दर्द ज़रा भी ज़ाहिर होने न दिया।

अगला दिन ___

आज मेरी बच्ची की सालगिरह है,इसी दिन तो वो मुझे मिली थी, सड़क के किनारे चंद टुकड़ो में...तुमने मेरी ज़िन्दगी को खुशियों से भर दिया है मेरी बच्ची...मैंने अपने आसूं पोछते हुए और चेहरे मुस्कान लिए उसे उठाया...उठ जाओ मेरी प्यारी बच्ची सुबह हो गई है।अलसाई आंखों में तुम कितनी मासूम लगती हो...मां सोने दो न...

तुम ऐसे नहीं मानोगी...रुको मैं जगाती हुं तुम्हें...मैं जैसे ही पीछे मुड़ी...नहीं नहीं मां मै उठ गई पानी का गिलास वही रख दो रंगोली ने मासूमियत से कहा...और मैं ज़ोरो से हंसने लगी।

सालगिरह मुबारक हो मेरी बच्ची...मैंने गले लगा लिया उसे...Thankyou मां Thankyou. उसने गले लगते हुए कहा ...अच्छा मेरा तोफ़ा तो दे दो मैं सो नहीं पाई ये सोच कर कि मेरा गिफ़्ट क्या होगा? इसके लिए तो तुम्हे शाम का इंतजार करना पड़ेगा, मैंने उसकी नाक खींचते हुए कहा।

क्या मां तुम भी न उसने मुंह बनाते हुए कहा। अब तैयार हो जाओ बेटा, वरना कॉलेज के लिए आज फ़िर देरी हो जाएगी।

मैं सुबह से आज के दिन को खास बना देना चाहती थीं। आज हम दोनों के अलावा रंगोली के दोस्त भी आने वाले थे। पहली बार हम दोनों के अलावा भी कोई और होगा। सारा दिन शाम की तैयारी में निकाल गया,लेकिन रंगोली अब तक नहीं आई, कहां रह है तुम रंगोली? मैंने अपने आप से कहा। तुम मेरा फोन भी नहीं उठा रही... मैं परेशान हो कर बैठ गई। तभी अचानक फोन की घंटी बजी... हैलो..! रंगोली का एक्सीडेंट हो गया है, आप जल्दी इस पते पर आइए। एक्सीडेंट ...!मेरे हाथ पैर ठंडे पड़ गए कुछ समझ नहीं आया मेरी बच्ची को क्या हो गया आँखों से आँसू की धार बह निकली।

हॉस्पिटल पहुंचते ही मैंने डॉक्टर से बात की...रंगोली की हालत गंभीर थीं। वो आईसीयू में बेहोश थी। तभी फिर उसी नंबर से फोन आया...

"आप पहुंच गई?" "जी मैं पहुंच गई" इससे ज़्यादा मुझसे कुछ कहा नहीं गया।

"आप वहीं रुकिए मैं थोड़ी देर में पहुंचता हूं"

इससे पहले मैं कुछ कहती फोन कट चुका था। और मैं फिर एक बार स्तंभ...क्या कहूं ख़ुद से?

मैं वहीं आईसीयू के बाहर खड़ी अपनी बच्ची को देख रही थीं। आज भी मुझे वो दिन बहुत अच्छे

से याद है जब तुम मुझे मिली थी...कैसे भूल सकती हूं। नहीं भूल सकती एक तरफ किसी से बिछड़ना और दूसरी तरफ तुमसे मिलना मेरी बच्ची।

"आप घबराइए मत रंगोली बहुत जल्दी ठीक हो जाएगी"

(अनुज की आवाज़ थी ये, कैसे न, पहचानती इस आवाज़ को।)

मैंने बिना पीछे मुड़े कह दिया "आप कैसे जानते है मेरी बच्ची को?"

जवाब आया "मै रंगोली का प्रोफ़ेसर अनुज"

"डॉ.अनुज वर्मा" मैंने कहा,अब हैरान होने की बारी उसकी थीं।

"आप रंगोली की मां?"अनुज ने हैरानी से पूछा...

"हां मैं रंगोली की मां हूं और वो मेरी बेटी है, सिर्फ मेरी"

मेरी बातों  में आई कड़वाहट को अनुज ने साफ साफ पहचान लिया और पहचानता भी क्यों न पुरानी पहचान जो ठहरी।

अनुज मुझे हैरानी से देखता ही रह गया और मैं अपनी बच्ची को, जो लड़ रही थीं अपनी ज़िन्दगी के लिए। दो दिन बीत चुके हैं रंगोली को अब तक होश नहीं आया। इस बीच अनुज ने भी कई चक्कर लगा लिए...रंगोली की हालत बिगड़ती जा रही थी और मैं वहीं बैठी कभी रंगोली को देखती तो कभी अनुज को। कितना सब बदल गया। मैंने आँखें बंद की और न जाने क्या सोचने लगी। तभी डॉक्टर साहब आए और उन्होंने कहा “रंगोली अब नहीं रही.

खून ज़्यादा बह जाने की वजह से उसकी हालत बिगड़ती गई और वो...” यह सुनते ही मैं फूट-फूट कर रो पड़ी। मानो सब कुछ एक बार फिर ख़तम हो गया...मेरी बच्ची मुझसे दूर चली  मकाँ है कब्र जिसे लोग ख़ुद बनाते हैं,

मैं अपने घर में हूं या मैं किसी मज़ार में हूं।

(मुनीर नियाज़ी)

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है। तुम्हारे न होने ये घर कितना सूना हो गया है। कुछ अच्छा नहीं लगता। वापस आ जाओ रंगोली...तभी अचानक डोर बैल बजी...देखा तो दरवाज़े पर रंगोली

के प्रोफ़ेसर थे... डॉ.अनुज वर्मा

"मैं वो बस..."वो कहते कहते रुक गया और उसकी नज़र दीवार पर टंगी तस्वीर पर चली गई,

"रंगोली के पापा नहीं हैं इस तस्वीर में..."बात पूरी होने से पहले मैंने कह दिया, उनकी मौत हो गई रंगोली के आते ही।

"मैं कुछ समझा नहीं.."

"अनुज वो सड़क की बच्ची थी और आख़िर में सड़क में मिल गई..."ये कहते ही मैं रोने लगी। किसी के जाने से ज़िन्दगी रुकती नहीं बस थोड़ी धीमी ज़रूर हो जाती है,आज मैं इस बात को बहुत अच्छे से समझ चुकी हूं।...आज रंगोली को गुज़रे हुए बीस साल गुजर चुके हैं। मैंने रंगोली के नाम से जिस NGO की नींव रखी थी, आज वहां रंगोली जैसी बहुत सी बच्चियां हैं, इन सब ने मेरी अधूरी ज़िन्दगी में अपनी मुस्कान से रंग भर दिया है।

किसी का यूं बिना बोले चले जाना खलता है, लेकिन उससे ज़्यादा खलता है उसका बिना बोले वापस आ जाना और मैं समझती ही नहीं ऐसे रिश्तों को ज़रूरत भर भी महसूस करना। ज़िन्दगी ने मुझसे कई इम्तहान लिए। कई बार गिरी-उठी। लेकिन हर बार एक नया रंग मुझे मिला ज़िन्दगी रंगीन करने के लिए। मेरा फैसला आज मुझे हर बच्ची की मुस्कान में सही नज़र आता है। उन सभी बच्चों की मुस्कान को देखकर ही मन रंगीन हो उठता है,जो

मुस्कान मुझे रंगोली से मिलती हुई दिखाई देती है।

**(नुज़हत बानो)**

**वक़्त बड़ा अजीब होता है,**

**वक़्त के साथ चलो तो किस्मत बदल देता है और**

**न चलो तो किस्मत ही बदल देता है।**

# भूमंडलीकरण और महिलाओं की स्थिति

आज हम एक वैश्विक युग में जी रहे हैं जिसे भूमंडलीकरण कहते हैं। वैश्विक या भूमंडलीय युग वर्तमान समय की पहचान बन चुका है। परंतु यह भी एक सच्चाई है कि इस वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में बहुत से ऐसे उपादान हैं जो अपनी पहचान खो चुके हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि भूमंडलीकरण एक ऐसी परिघटना के रूप में प्रकट हुआ है जो सहज व स्वाभाविक तौर पर बहुत से समाजों में घटित नहीं हुई वरन यह सूचना तकनीक से संचालित संचार माध्यमों के द्वारा भूमंडल को अपने दायरे में समेटती है। 20वीं शती के इतिहास की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है जो आर्थिक उदारीकरण और बाज़ारवाद के रथ पर सवार हो चारों ओर फैल गई। संचार माध्यमों जैसे इंटरनेट आदि के माध्यम से तीव्र गति से दौड़ती पूँजी ने बड़े नाटकीय तरीक़े से लोगों की आय में वृद्धि की परंतु उसी तेज़ी से लोगों में अमीरी-ग़रीबी का भेद भी बढ़ा। पूंजी के तीव्र प्रवाह और उन्मुक्त बाज़ार व्यवस्था ने सांस्कृतिक सीमाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया। यह पश्चिम से ही आने वाले एक नव्य साम्राज्यवाद के रूप में उभरा है। भूमंडलीकरण ने अपने प्रभाव से विकासशील देशों के आर्थिक,सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे में बड़ा परिवर्तन ला दिया है। बहुसांस्कृतिकता के स्थान पर संस्कृति को एक आयामी बनाने का परचम लहराया जा रहा है। विज्ञापनों द्वारा उपभोक्तावाद की जिस संस्कृति को स्थापित किया जा रहा है वह नैतिक मानदंडों और मानवीय मूल्यों को पैरों तले रौंद कर समाज को मूल्यहीनता की ओर धकेल रही है। सामाजिक आर्थिक बदलाव की इस सारी प्रक्रिया में यदि कोई सबसे ज़्यादा प्रभावित हुआ है तो वो हैं बच्चे और स्त्री क्योंकि परिवार में वे ही सबसे कमज़ोर टारगेट है। उत्पादों को बाज़ार में बेचने के लिए बने विज्ञापनों में खिलखिलाते,मुस्कुराते, सजे-सँवरे ये बच्चे और महिलाएँ एक ओर अपनी ख़ूबसूरत बहुरंगी छवि से दर्शक का ध्यान आकर्षित करते हैं तो दूसरी ओर स्वयं दर्शक के रूप में उस छवि से प्रभावित होकर उत्पादों को बेचने में मदद करते हैं। इस प्रकार भूमंडलीकरण का प्रभाव उन पर दोहरे रूप में दिखाई देता है।

साहित्य में जिस स्त्री विमर्श की चर्चा की जाती है,भूमंडलीकरण के दौर में उसकी स्थिति क्या है उस पर बात करते हुए हमें स्त्री के अस्तित्व व महिला सशक्तिकरण से जुड़े सवालों से जूझना पड़ता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिला अधिकारों की लड़ाई बहुत पुरानी है। प्रथम विश्व महिला सम्मेलन सन 1975 में मैक्सिको में हुआ और वर्ष 1975 से 1994 को महिला दशक के रूप में घोषित किया गया। अनेक योजनाएं बनायी गई, जिनमें स्त्री-शिक्षा, लिंग-भेद को मिटाना, रोज़गार के अवसर बढ़ाना, समान राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकार देना आदि शामिल हैं। 1985 में नैरोबी में तीसरा विश्व महिला सम्मेलन हुआ और रिपोर्टों से ज्ञात हुआ कि महिला दशक में निश्चित किये गये लक्ष्यों में आंशिक प्रगति हुई है। अतः एक प्रगतिशील

रणनीति तय की गई। चौथा सम्मेलन चीन में 1995 में हुआ और 1997 में भारत में विश्व महिला सम्मेलन हुआ। परंतु सारी दुनिया की महिलाओं ने मिलकर अपने अस्तित्व की लड़ाई के लिए जो क़दम उठाया और लक्ष्य निर्धारित किए, पितृसत्तात्मक समाज में उनके लक्ष्य की प्राप्ति में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई। भूमंडलीकरण ने अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं के अस्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डाला है जो अनेक रूपों में महिला अधिकारों और उनकी छवि को प्रभावित कर रहा है।

सामंती मूल्यों के कारण भारत में स्त्री को या तो पुरुष के सम्मान का प्रतीक माना गया है अथवा उसको सौंदर्य और आकर्षण का केंद्र बिंदु मानकर मनोरंजन की वस्तु के रूप में देखा गया है। जैसे कि आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक के साहित्य में इसके स्वरूप को देखने से पता चलता है। आधुनिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों में स्त्री के उद्धार, उनकी शिक्षा-दीक्षा के जो प्रश्न उठे,वो भी शीलवान् स्त्री और परिवार तथा समाज को आदर्श बनाने में योगदान देने वाली स्त्री का निर्माण करने की बात करते हैं। भूमंडलीकरण ने स्थितियों को बदला है। बाज़ारवाद की ज़रूरत ने स्त्री की पुरानी छवि को बदलकर जो घर की दीवारों में क़ैद मुक्ति की आकांक्षा कर रही थी,एक नई छवि को स्थापित किया है । रोज़गार के नए-नए अवसरों के कारण अलग-अलग क्षेत्रों में उनके लिए काम करने के रास्ते बने। पुराने कामों जैसे टीचर,नर्स,डॉक्टर के अलावा पायलट,इंजीनियर,पुलिस और सेना में भी उनका प्रवेश हुआ है। मीडिया जगत में अनेक ग्लैमरस रूपों में उन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है। परंतु रोज़गार के मौक़े बढ़ने के बावजूद पुरुष सहकर्मियों के मुक़ाबले उनका वेतन कम है। वस्तुतः भूमंडलीकरण के प्रभाव विरोधाभासी हैं। स्त्री के जीवन से जुड़े बदलाव जो कि प्रथम दृष्ट्या बहुत सकारात्मक दिखाई पड़ते हैं, बारीकी से अध्ययन करने पर उसमें दरारें स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि स्त्री पर पड़ने वाले ये प्रभाव अपने सम्मुख रूप में बहुत सकारात्मक दिखाई देते हैं। इसमें स्त्री जीवन की नई भूमिकाएं और नई पहचान उभरती है जो उसकी जीवनचर्या का अंग है। परंतु इस नई शक्तिशाली स्त्री को नई असमानता और असुरक्षा का सामना करना पड़ रहा है। एक तरफ़ भूमंडलीकरण लोकतांत्रिक व्यवस्था को समर्थन देने की बात करता है परंतु दूसरी ओर नारीवाद की उपेक्षा करता है । स्त्री को सशक्त बनाने की बात करते हुए भी परिवार,विवाह के संस्था,धर्म और परम्परा को यह कोई क्षति नहीं पहुँचाता। स्त्री शोषण के किसी भी विधान को निशाना न बनाते हुए भी वह स्त्री उत्थान की बात करता है। वस्तुतः बाज़ारवाद पर आधारित यह भूमंडलीकरण स्त्री जीवन के मूल प्रश्नों से अपने बचाव की दिशा में चलता है। भूमंडलीकरण ने स्त्री की आर्थिक सामाजिक भूमिका में जो परिवर्तन उपस्थित किए हैं उसके विपरीत प्रभाव की ओर दृष्टि डालने पर हमें ज्ञात होता है कि इस व्यवस्था में स्त्री श्रम का शोषण हो रहा है। साथ ही उसे दिन प्रतिदिन के जीवन में नई जटिलताओं का सामना करना पड़ रहा है। बाहर काम करने के अतिरिक्त उसे घर में भी काम करना पड़ रहा है, पारिवारिक अपेक्षाएं उसे आराम के वो अवसर नहीं देती जो एक पुरुष को घर का काम न करने के अधिकार के कारण स्वतः प्राप्त है। स्त्री को काम पर रखने का एक

कारण यह भी है कि उसका श्रम सस्ता होता है और उनकी छँटनी करना भी आसान होता है। उपद्रव का भय नहीं रहता क्योंकि अपने घरेलू व्यस्तताओं के चलते वह इस प्रकार के आंदोलनों में भाग लेने के अवसर नहीं जुटा पाती। अविवाहित स्त्री को काम पर रखना और भी लाभदायक रहता है क्योंकि वे ओवरटाइम करती हैं और उनके लिए शिशुगृह की व्यवस्था,मातृत्व अवकाश तथा बच्चों की देखभाल के लिए दिए जाने वाले अवकाश की ज़रूरत नहीं पड़ती। भूमंडलीकरण का स्त्री के संदर्भ में एक और नकारात्मक पहलू यह भी है कि इस नई व्यवस्था में कम शिक्षित, तकनीकी ज्ञान से अनभिज्ञ और उम्रदराज स्त्रियों में बेरोज़गारी बढ़ी है क्योंकि तकनीक पर आधारित व्यवस्था ने पढ़ी लिखी युवा स्त्री के लिए रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए हैं। बाज़ार में दिखाई देने वाले और संचार माध्यमों में दिखाए जाने वाले विज्ञापनों द्वारा हमारे घर में प्रवेश करने वाले साज सज्जा के विविध उपादानों में भी स्त्री को वस्तु के रूप में बदलने में मदद की है। सौंदर्य प्रतियोगिताओं में विकासशील देशों से विश्व सुंदरी और ब्रम्हाण्ड सुन्दरी के रूप में चयनित बालाओं ने देश की हर लड़की के मन में सौंदर्य प्रसाधनों के प्रयोग द्वारा वैसा ही रूप पाने की होड़ पैदा कर दी है। इससे स्त्री की पहचान व स्वरूप बदला है। वह धीरे धीरे एक सुंदर वस्तु में परिवर्तित हो रही है। उपभोक्ता संस्कृति ने इसे एक उपभोग की वस्तु बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। परिवहन और संचार क्षेत्र की क्रान्ति ने दुनिया को एक विश्वग्राम में बदल दिया है। पर्यटन और मनोरंजन के साधन भी अब एक रेखीय न होकर अनेक रूप धारण करके सामने आ रहे हैं। वस्तुतः भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में पर्यटन और मनोरंजन एक विशाल उद्योग के रूप में सामने आए हैं जो नित नए उपक्रम द्वारा अपने संभावित उपभोक्ता को रिझाने का काम करते हैं। स्त्री की विविध छवियों को भुनाने के लिए इन उद्योगों ने उसका अनेक तरह से उपयोग किया है। एक ओर सस्ते श्रम और स्वाभाविक सेवा भावना की अपनी छवि के कारण पर्यटन के क्षेत्र में उनका उपयोग किया जा रहा है तो दूसरी ओर मनोरंजन के साधन के रूप में तथा यौन व्यापार के क्षेत्र में भी स्त्री को इस्तेमाल करने की घटनाएँ बढ़ी हैं। उनके मानसिक-शारीरिक विकास पर भी इस बाज़ारवादी व्यवस्था ने अपना नियंत्रण स्थापित कर के स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया से गुज़रने के उसके अधिकार पर रोक लगायी है। छोटी-छोटी लड़ाइयों में स्त्री अपमानित व प्रताड़ित होने को मजबूर है। स्त्री के प्रति होने वाले अपराधों की कड़ी में यह एक घृणित और अमानवीय अपराध की श्रेणी में आता है। परंतु इस पीड़ित महिलाओं की आवाज़ को चमक धमक और बाज़ार से प्राप्त होने वाले लाभ की रंगीनियों के पीछे छुपा दिया जाता है। साहित्य में भूमंडलीकरण से स्त्री पर पड़ने वाले प्रभावों की बात होती है परंतु उसका स्वर सभा-गोष्ठियों में होने वाली बहसों तक ही सीमित है। चारदीवारी से बाहर निकल कर एक आंदोलन के रूप में खडड़े होने की स्थिति वहाँ दिखाई नहीं देती। अतः कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण के प्रत्यक्ष सकारात्मक प्रभाव से अधिक स्त्री जीवन पर उसके परोक्ष रूप से पड़ने वाले प्रभावों का पड़ताल करना ज़रूरी है तभी हम इस तरीक़े की समस्याओं और ज़रूरतों का सही निदान कर सकते हैं।

डॉ0 साधना शर्मा

# सुष्मिता वंदोपाध्याय

सुष्मिता वंदोपाध्याय, एक ऐसी लेखिका जिसके पहले उपन्यास ने ही न केवल बंगला वरन् समस्त साहित्य जगत को चौंका दिया था। महिला लेखन को एक सीमित अनुभव जगत का लेखन मानकर हल्के में लेने वाले लोगों की धारणाओं को गलत सिद्ध करते हुए वे पाठक को एक ऐसे खतरनाक और निषिद्ध क्षेत्र में ले जाती हैं जिसके बारे में जानने की उत्सुकता तो है परंतु उस पर  भय इस कदर हावी है कि औत्सुक्य दब जाता है। सुष्मिता के उपन्यास कपोल कल्पित होते तो उतने खास न होते जितने आज हैं। इनका वैशिष्ट्य उन दिल दहला देने वाले वर्णनों में है जो स्वानुभूत हैं।

आज भी समाज हिंदू-मुसलमान के आपसी अंतर्जातीय वैवाहिक संबंध को आसानी से नहीं पता पाता तो बीस पच्चीस वर्ष पहले तो और भी कठिन रहा होगा। उस पर ब्राह्मण समाज की बंगाली लड़की, भारतीय नहीं बल्कि विदेशी मुसलमान से शादी कर ले तो।.... यह तो घर साथ-साथ समाज में तूफान को आमंत्रण देनेवाला कदम था। सुष्मिता के प्रेम पर कोई भी भय या आतंक विजय नहीं प्राप्त कर पाया। कलकत्ता में व्यापार करने वाले अफगानी युवक जानबाज से विवाह का निर्णय सुष्मिता के क्रांतिकारी व्यक्तित्व को कैसे और अधिक धारदार बना गया इसी के प्रामाणिक दस्तावेज हैं उनके उपन्यास। बड़ी बेबाकी और जुनूनी बहादुरी से वे –'काबुलीवाले की बंगाली बीबी', 'तालिबान, अफगान और मैं' तथा 'एक अक्षर भी झूठा नहीं' —जैसी रचनाएँ लिखती रहीं, यह जानते हुए भी कि जिस तबके के विषय में वे लिख रही हैं उनकी दृष्टि में यह ऐसा काम है जिसकी सजा मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

ऐसा नहीं है कि अपने जीवन और लेखन के परिणाम को ले कर सुष्मिता के मन में कभी कोई शंका- आशंका न व्यापी हो,पर वास्तविक सत्य को दुनिया के समक्ष लाने की जिद ने उनके हर संदेह को परे ढकेल दिया। वे अपनी पुस्तक 'एक भी अक्षर झूठा नहीं' में लिखती हैं, -

'मेरा जीवन चालीस वर्ष की उम्र में ही इस संधिवेला पर खड़ा है। अपने मन से मैं सवाल करती हूँ- क्या चाहती हो, जिंदगी, या वही चिरंतन सत्य मौत, मोरिते चाई न आमी सुंदर भुवने, मानवार माझे आमी बाचीबारे चाई। मृत्यु सत्य है पर क्यों माँगू, माँगने का अर्थ ही है पराजय। नहीं, मैं पराजित होना नहीं जानती, हारी नहीं। चालीस वर्षों तक केवल एक क्षेत्र को छोड़ कर मैंने कभी भी हार स्वीकार नहीं की। करूँगी भी नहीं। आज भी मैं हर क्षेत्र में लड़ाई करके ही जिंदा हूँ।'

बात सोलह आने सच है। अपने बचपन का परिचय देते हुए लेखिका कहती है,--'लड़की, मैं बिल्कुल अच्छी नहीं थी। मुझसे कोई पिटा न हो ऐसा मेरा कोई दोस्त न था। बचपन से ही अन्याय

का विरोध करना उसके संस्कार में था। समाज में स्त्री और पुरुष का भेद और स्त्री पर होने वाले अत्याचार अनेक प्रश्न उठाते रहे, बच्ची सुष्मिता के मन में, किशोरी सुष्मिता के मन में, युवती सुष्मिता के मन में, पत्नी और वधू सुष्मिता के मन में।' इनके उत्तर वह अपने स्वतंत्रचेता मन से स्वयम् ही खोजती हैं।अपने खोजे हुए उत्तर को तर्क की कसौटी पर कसने के उपरांत ही लेखिका उसे स्वीकार कर पाती है।

सुष्मिता मानती हैं कि समाज में प्रचलित यह मान्यता कि पुरुष स्त्रियों को खत्म कर देते हैं,गलत है। वे कहती हैं, 'लड़कियाँ खत्म हो जाती हैं। इसके बाद स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठ सकता है कि लड़कियाँ किस तरह खत्म हो जाती हैं, जवाब एक ही है। वह है कि पुरुष महिलाओँ को खत्म कर देते हैं।....मैं नहीं कहती। कोई पुरुष महिलाओं को खत्म नहीं कर सकता।..नारी ने स्वयम् ही पैरों में पराधीनता की बेड़ियाँ पहन रखी हैं।..दुनियाँ की अधिकांश नारियाँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हैं।'– वे आगे कहती हैं—'महिलाओं को गीता-पाठ से वंचित रखा गया है। मैं गीता-पाठ करती हूँ और करूँगी। गीता सिर्फ पुरुषों की नहीं है। ये अनधिकार या सब कुछ पुरुषों का बनाया हुआ है। धर्म ने यह नहीं कहा है...समाज ने भले ही अधिकार न दिया हो, धर्म ने यह अधिकार दिया है।'

स्त्री को पराधीन रखने के लिए सबसे प्रभावशाली और खतरनाक हथियार है –धर्म। सुष्मिता की उन मनुवादी पंक्तियों से सख्त असहमति है जो स्त्री को मानवी तक नहीं रहने देते, उसे उसके सारे अधिकारों से वंचित कर दासी मात्र बना देते हैं। वे उन व्याख्याओं की पुनर्व्याख्या करती हैं।

पारंपरिक बांगला ब्राम्हण परिवार में जन्मी सुष्मिता ने जिस समय अफगानी मुसलमान जानबाज खान से अपने प्रेम के विषय में अपने घर वालों को बताया तब कैसा प्रलयंकारी तूफान घर में आया और उन्हें किस प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक यंत्रणा से गुजरना पड़ा इसका चित्रण उपन्यास में पढ़ा जा सकता है। वे न हिंदू रहीं न मुसलमान। अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए वे लिखती हैं—'वे (मुसलमान) कहते हैं मैं विधर्मी हिंदू हूँ, बंगाली की औलाद हूँ अत उनका धर्म ग्रहण करने पर सब धुल जाएगा। मैं पवित्र हो जाऊँगी।---- लेखिका ने इस्लाम नहीं अपनाया अतः वे वहाँ स्वीकार्य नहीं थीं। दूसरी ओर हिंदू कहते हैं—जब मुस्लिम से शादी की है तब हिंदू धर्म पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। मेरी जाति भ्रष्ट हो गई।'--- वे आगे लिखती हैं—'वर्तमान में मैं इस्लाम धर्म के कुरान की वाणी सबके सामने प्रस्तुत कर रही हूँ, मुहम्मद के बारे में लिख रही हूँ इसलिए इस्लाम धर्म में मेरे लिए मौत है। फिर इस्लामधर्मी से शादी की है इसलिए हिंदू धर्म में मेरे लिए असीम घृणा, अवहेलना, मुझे स्वीकार न करना, मृत्यु- शैय्या पर पड़ी होने पर भी मुड़ कर न देखना।' ---वे पूछती हैं—'अब मुझे किस धर्म के लोगों के पास आश्रय मिलेगा।

सिर्फ इंसान के रूप  कौन ग्रहण करेगा। नारी के तौर पर किस धर्म के लोगों के समक्ष मेरा महत्व है, या मृत्यु से ही सारे प्रतिवादों की समाप्ति होगी।'

लेखिका ने –'काबुलीवाले की बंगाली बीबी'-, 'तालिबान अफगान और मैं'—नामक अपनी रचनाओं में अफगानिस्तान में अपने ऊपर हुए अत्याचारों का विस्तृत वर्णन किया है। शारीरिक और मानसिक रूप से उसे तोड़ने का प्रयत्न शौहर ही नहीं बल्कि पूरा परिवार, समाज और उससे आगे बढ़ कर मुस्लिम धर्म का परचम पूरे विश्व में फैलाने का दंभ करने वाले अत्याचारी तालिबानों तक ने किया। अफगानी मुस्लिम महिलाओं की दयनीय दशा, उसकी अशिक्षा, पुरुष पर उसकी आर्थिक-सामाजिक निर्भरता और फलस्वरूप प्रताड़ना की किसी सीमारेखा को जाने बिना निरंतर मूक भाव से सब कुछ सहते जाने की मजबूरी का जैसा रोंआँ गनगना देने वाला चित्रण सुष्मिता ने किया है वह धर्म को तमाम प्रश्नों के घेरे में लेने के लिए काफी है। अफगान स्त्रियों के लिए इसे ही अपनी नियति मान कर समझौता कर लेने के अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं है क्योंकि दुनिया का ध्यान अफगान समस्या पर अपनी सियासी रोटियाँ सेकने पर तो है परंतु वहाँ तालिबानी जुल्म की सर्वाधिक शिकार महिलाओं पर नहीं है।

कुरान के वे अंश जिसमें मनुष्य मात्र को बराबर माना गया है अथवा वे आयतें जिनमें स्त्री को पुरुष के समकक्ष दर्जा दिया गया है न किसी कानून का हिस्सा बन पाती हैं न ही इस्लाम के नाम पर आतंक फैलाने वाले तालिबानों का ध्यान ही आकर्षित कर पाती हैं। वे अंश जो तत्कालीन परिस्थितियों अथवा व्यक्ति-विशेष की पुरुषवादी सोच के परिणाम स्वरूप रचे गए हैं, कानून बन आधी आबादी का जीना मुहाल किए हुए है। लेखिका ने अफगानी महिलाओं के संदर्भ में धर्म की आड़ में किए जा रहे शोषण का जोरदार विरोध किया है। जिस प्रकार के प्रश्न इन पुस्तकों में इतनी बेबाकी से उठाए गए हैं कि स्वयं लेखिका को भी अपनी अंतिम परिणति का ज्ञान हो गया था। वही हुआ। महिलाओं के लिए जान जोखिम में डाल कर उनके उत्थान के लिए तत्पर इस बहादुर लेखिका की अफगानिस्तान में हत्या कर दी गई।

लेखक को कभी मारा नहीं जा सकता। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से हमेशा जीवित रहता है नहीं तो कबीर, तुलसी, मीरा जैसों को समाज कब का मार चुका होता। सुष्मिता की ये रचनाएँ एक बेहद बंद और व्यक्तिगत समाज के दरवाजे को खोलती हैं। खुलता हुआ यह दरवाजा बहुत जोर से चुँ... चर्र...  तो करता ही है साथ ही सदियों से चौखट से जकड़े होने के कारण उस पर लगे जाले, उनमें कैद मरे- अधमरे कीड़े- मकोड़े, अंधेरा, धूल, दुर्गंध सब कुछ अकबका कर जागने –भागने लगते हैं। दूसरी ओर उसको जकड़े तालिबानी हाथों का प्रहार तेज हो जाता है। प्रश्न उठता है क्यों तेज हुआ यह प्रहार, क्यों घबड़ा गए वे हाथ, उनके मुकाबले लेखिका तो निहत्थी थी। कुछ नहीं था उसके पास न जनबल न धनबल। फिर भी आतंकी स्वयं आतंकित

हो गए। क्यों... उत्तर है –लेखिका के पास थी 'कलम की ताकत'। तोप और तलवार से ज्यादा प्रभावशाली, ज्यादा मारक और अमरत्व का वरदान लिए। आज के बाजारवादी समाज में जब हम यह मानने लगे हैं कि साहित्य मूल्यहीन हो गया है, अब इसे कोई नहीं पढ़ता तो फिर क्या जरूरत थी सुदूर देश में बैठ कर विदेशी भाषा(बंगला) में अपने तालिबानी मुठभेड़ के संस्मरण लिख रही एक –बेचारी- महिला को क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतार देने की। इसका तात्पर्य हुआ कि साहित्य का पैनापन अभी भोथरा नहीं हुआ है। अफगानिस्तान में घर से घसीट कर ले जाते हुए तालिबानों की सबसे बड़ी नाराजगी यही थी कि उनके बारे में ऐसा क्यों लिखा।

सुष्मिता महिलाओं की ताकत से परिचित हैं। पुरुष भी महिला शक्ति से न केवल परिचित हैं वरन् आतंकित भी हैं इसीलिए बकौल लेखिका, ---'सभी कट्टरपंथी पुरुष महिलाओं की शक्ति के विषय में काफी सजग हैं। पुरुष अच्छी तरह जानते हैं कि यदि एक बार महिलाओं की शक्ति या उनकी चेतना को जागृत या बंधनमुक्त कर दिया गया तो पुरुष जाति या पितृ तंत्र की शक्ति या आधिपत्य बुरी तरह प्रभावित होगा। इसीलिए समस्त नारी जाति को कट्टरपंथी दबा कर रखते हैं। महिलाएँ सत्ता में अधिष्ठित न हो सकें इसलिए इस तबके के पुरुष खासकर तालिबान ने यथासंभव कठोर शासन चला रखा है। अपने स्वार्थ कामना, वासना को चरितार्थ करने के लिए काल्पनिक नियम कानून को धर्मीय निषेधाज्ञा करार दे कर सबको संत्रस्त कर रखा है। महिलाओं के समान अधिकार के मामले में विश्व के सभी धर्मशास्त्र एक जैसे रूढ़िवादी हैं। इस्लाम धर्म इसका अपवाद नहीं है।'

जाहिर है सुष्मिता का विरोध किसी धर्म से नहीं है, उन्हें शिकायत है उस हर व्यक्ति या व्यक्ति समूह से जो धर्म के नाम पर स्त्रियों का शोषण करते हैं। वे स्त्रियों को आगाह करते हुए लिखती हैं,-- 'बस, ट्राम, बाजार हर जगह पुरुष महिलाओं को प्राथमिकता देते हैं। सिनेमा की लाईन हो या राशन की लाईन हो सभी कहते हैं छोड़ दो औरत जात है। महिलाएँ भी खुश होती हैं, मुस्कुराकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हैं, परंतु यह नहीं समझतीं कि उन्हे अबला समझकर मौका दिया है। क्यों लें मौका? जो मौका हमें मेरुदंडहीन बना देता है। क्यों विश्व की महिलाएँ सिर उठा कर इन अन्यायों का विरोध नहीं करती? सिर झुका कर सब कुछ स्वीकार कर लेती हैं?'

डॉ गीता शर्मा

तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही खूब है लेकिन,

तू इस आँचल से एक परचम बना लेती तो अच्छा था

- असरारुल हक़ मजाज़

# फागुन के दिन चार,आई बसंत बहार

बसंत पंचमी के दिन के शुरू होने के साथ ही भारतीय जन जीवन में उल्लास और उत्साह की परंपरा आरंभ हो जाती है जिसका पूर्ण चरम होली के उत्सव में दिखाई देता है। यह समय साल में एक बार प्रकृति की मनोहर सौग़ात लेकर आता है। यह नई फसल के आने की ख़ुशी का त्योहार भी है। होली के साथ बहुत सारी ऐतिहासिक और पौराणिक कथाएँ जुड़ी हुई हैं। होलिका दहन की कथा तो सर्वविदित ही है।

होली के आनन्द का वर्णन संस्कृत और हिंदी साहित्य में भरपूर मिलता है। बाणभट्ट की कादम्बरी में फाग और भवभूति के मालती माधव नाटक व राजशेखर की काव्यमीमांसा में मदनोत्सव का वर्णन होली का ही पूर्व रूप है। प्रसिद्ध फ़ारसी विद्वान अलबेरूनी ने भी अपने एक यात्रा संस्मरण में वसंत ऋतु में मनाए जाने वाले होलिकोत्सव का सुंदर वर्णन किया है। ऐसा भी माना जाता है कि होली के रंगोत्सव का आरंभ सर्वप्रथम राधा और कृष्ण से हुआ था इसीलिए होली के अधिकांश गीतों में राधिका गोरी व साँवरे सलोने कृष्ण का मोहक वर्णन मिलताहै। होली वास्तव में सहज स्नेह व प्रेम का प्रतीक है। मीरा के पदों में होली के बहुत सुंदर चित्र मिलते हैं, जहाँ वह अपने नटनागर की प्रेमाभक्ति में डूब कर सहज समाधि का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रियतम के प्रति सहज समाधि में लीन हो जाती हैं। उनका एक पद यहाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत है। -

फागुन के दिन चार होली खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजे अनहद की झंकार रे ,
बिन सुर राग छतीसूं गावै रोम रोम रणकार रे ,
सील संतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे ,
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे ,
घट के सब पट खोल दिए हैं लोकलाज सब डार रे ,
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल बलिहार रे।

यह मीरा का प्रेम है जहाँ वह रोम रोम से अपने आराध्य के प्रति समर्पित होकर गा उठती है -

पग घुंघरु बांधि मीरा नाची रे।

मुगलकाल में अकबर -जोधाबाई तथा जहांगीर और नूरजहाँ के होली खेलने का उल्लेख भी मिलता है। बहादुरशाह ज़फ़र को भी होली बहुत प्रिय थी।

नज़ीर अकबराबादी होली का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

नौ बहारों से तू होली खेल ले इस दम
फिर बरस दिन के ऊपर है होली की बहार।
यानी जो समय बीत गया वह बीत गया। इसलिए जो सामने है उसका आनन्द ले।
हरिवंशराय बच्चन भी कुछ कुछ ऐसी ही बात होली के माध्यम से व्यक्त करते हुए लिखते हैं -
प्रेम चिरंतन मूल जगत का
बैर घृणा भूलें क्षण की
भूल चूक लेनी देनी में
सदा सफलता जीवन की।
जो हो गया बिराना उसको फिर अपना कर लो
होली है तो आज शत्रु को बाँहों में भर लो।
वास्तव में होली भूलचूक को भूलने का भी त्योहार है। मन की उलझी गाँठों को खोलने का त्योहार है। बच्चन एक अन्य कविता में लिखते हैं -
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी
किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
सिनेमाजगत ने भी फ़िल्मी गीतों के माध्यम होली के अनेक मनमोहक चित्र प्रस्तुत किए हैं। कई गीतों की एक एक पंक्ति के माध्यम से उनका उल्लेख किया जा सकता है-
आज बिरज में होली रे रसिया.....
बिरज में होली में खेलत नन्दलाल.....
होली आई रे कन्हाई होली आई रे.....
आज न छोड़ेंगे हम बरजोरी
खेलेंगे हम होली, आई मस्तों की टोली....
आयो फागुन हठीलो , डारन दे रंग डारन दे.....
अवध में होली खेलें रघुवीरा....

अरे जारे हट नटखट न छेड़ मेरा घूँघट.....

यह कुछ गीत हैं जो मेरी स्मृति में उभर रहे हैं। जानती हूँ बहुत सारे खूबसूरत गीत इस समय मैं भूल रही हूँ। पर इन पंक्तियों को पढ़ते हुए अगर आपको अन्य गीत या अपने प्रदेश के होली गीत याद आने लगें , पहाड़ की खड़ी होली व बैठिकी होली याद आने लगे तो आपको वास्तव में होली मुबारक। टेसू के फूलों से बने रंग याद आने लगें तो होली मुबारक। कुमांऊ के अलग-अलग प्रदेशों की होली के अलग अलग रंग हैं। आध्यात्मिक और शास्त्रीय गायन से होली का आरंभ होता है , फिर धीरे-धीरे प्रेम तथा श्रृंगार के रंगों में घुल जाता है। "सीता परमेश्वर वर पाए ", "वसुदेव की गोद में कन्हैया हैं" ,"भगीरथ गंगा धरती पर ले आए" जैसे गीतों से होती हुई होली "तेरी चाल चटक चंचल नैना" से लेकर "झुकि आयो शहर में ब्यौपारी, इस ब्यौपारी को प्यास बहुत है, पानी पिला दे ओ नथवारी" जैसे गीतों से सुगंध और सुवास घोल देती है।

मैं तो कुमांउनी होली पर ही अटक गई। वास्तव में संपूर्ण भारत में होली के विविध रंग देखें जा सकते है। मथुरा में बरसाने की व हरियाणा की लट्ठमार होली , वृंदावन में बाँकेबिहारी मंदिर की होली , राजस्थान की माली होली , ग़ैर होली व डोलची होली के अलग रंग हैं। कर्नाटक में होली कामनाहब्बा के नाम से मनाई जाती है। बिहार में यह फगुआ है तो महाराष्ट्र में रंगपंचमी। गोवा में शिमगो है तो गुजरात में गोविंदा होली। पंजाब में होला मोहल्ला के नाम से यह त्योहार प्रसिद्ध है।

अवध , ब्रज ,मगध , मध्यप्रदेश , राजस्थान, मैसूर , कुमाऊँ , गढ़वाल और वे सभी अन्य प्रदेश जिनके इस उत्सव के रंग मैं भूल रही हूँ उन सभी को रंगों का यह उल्लास पर्व मुबारक हो।

अंत में इला प्रसाद की इन पंक्तियों के साथ मैं फाल्गुन मास की पूर्णिमा के त्योहार पर अपनी बात का समापन करती हूँ –

जल उठे जंगल में पलास
जागी है मन में नई प्यास ,
मुस्कराए अमलतास।
होली आ गई ....

डॉ आशा जोशी

# भारतीय समाज में मीडिया का प्रभाव

मीडिया समाज को जागरूक रखने का सशक्त माध्यम है। आज से कुछ समय पहले तक समाज पर सरकारी मीडिया का वर्चस्व था जो वही सूचना जनता में प्रसारित करता था जो सरकार द्वारा दी जाती थी। परंतु समय परिवर्तन के साथ-साथ सोशल या सामाजिक मीडिया की वृद्धि होती चली गई, जिसने समाज में अपनी महत्वपूर्ण पहचान बनाई है। आज सामाजिक मीडिया का प्रयोग सभी प्रकार के समाज के वर्गों में तथा दूर दराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के मध्य राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय सूचनाओं व विचारों के प्रचार व प्रसार के लिए किया जाता है। मीडिया अनेक संपर्क सूत्रों के माध्यम से कार्य करता है जिसमें दूरदर्शन,अखबार, चलचित्र, इंटरनेट इत्यादि सम्मिलित हैं।

हम देख सकते हैं कि मीडिया मूलत: दो प्रकार का होता है: प्रिंट मीडिया व दृश्य व श्रव्य मीडिया

a) प्रिंट मीडिया के अंतर्गत अखबार, मैगज़ीन व पम्फलेट इत्यादि के माध्यम से सूचनाओं को प्रसारित व प्रेषित किया जाता है।

b) दृश्य व श्रव्य मीडिया के अंतर्गत टेलीविज़न, रेडियो व इंटरनेट आते हैं जिनके माध्यम से देश-विदेश में होने वाली घटनाओं व सूचनाओं को प्रसारित व प्रचारित किया जाता है।

दोनों ही प्रकार के मीडिया समाज की उन्नति में विशेष योगदान देते हैं।

ऐसा कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास होता है। निरोगी काया रखने की राह में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। बहुत से हेल्थ चैनल और चैनलों पर स्वास्थ्य संबंधित जानकारी इसका प्रमाण है। अत: हम देखते हैं कि मीडिया समाज के प्रत्येक वर्ग को बहुत गंभीरता से प्रभावित करता है राजनीति, बालविकास, स्त्री व प्रौढ़ शिक्षा रोजगार व अनेक अन्य क्षेत्रों के विकास में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

परंतु यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि कोई तथ्य झूठ नहीं है, इसलिए वह तथ्य धोखा नहीं देगा, ऐसा नहीं है। यदि मीडिया समाज के विकास को दर्शाने का सशक्त माध्यम है तो यह उसमें पनपने वाली बुराइयों के लिए भी उत्तरदायी है। आज हम उस समाज में रह रहे हैं, जहाँ मीडिया द्वारा अनेक क्रांतियों को जन्म दिया जाता है। हम चारों तरफ से अपने को मीडिया के जाल में इस प्रकार फंसा हुआ पाते हैं जैसे मकड़ी अपना जाल बनाकर उसमें सब मक्खी मच्छर को घेर लेती है। हम मीडिया द्वारा प्रचारित प्रसारित सूचनाओं पर विश्वास करते जाते हैं

और अपनी सोचने व समझने की शक्ति का प्रयोग करना बंद कर देते हैं। हम हर चीज के लिए गूगल पर आश्रित होते जा रहे हैं।

चाहे वह तीन तलाक का मुद्दा हो अथवा निर्भया हत्याकांड का मुद्दा हो जनमानस की भावनाओं को झकझोड़ने में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। देश में आर्टिकल 370 समाप्त किए जाने पर भी अथवा राम जन्मभूमि पर हिंदुओं के पक्ष निर्णय दिए जाने की अवस्था में ये मीडिया ही था जिसने समाज में सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बनाए रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। मीडिया के द्वारा ही सब वर्गों के लोगों ने आपस में एकजुट रहने व भाईचारा बनाए रखने की सबसे प्रार्थना की व समाज के सभी वर्गों ने इसको सहर्ष दिल से स्वीकारा।

मीडिया का समाज के विभिन्न वर्गों पर प्रभाव

1. सामाजिक मीडिया समाज के विभिन्न वर्गों को समाचार, गपशप, फैशन, शिक्षा तथा अन्य विभिन्न विषयों पर होने वाली गतिविधियों से अवगत कराने का कार्य करता है। सामाजिक मीडिया के द्वारा मनुष्य की जिंदगी में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्येक विषय पर सब प्रकार की सूचनाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। सामाजिक मीडिया द्वारा अनेक प्रकार की रोजगार योजनाओं को आम जनता के मध्य इस प्रकार प्रचारित किया जाता है, जिससे सभी वर्ग के नागरिक इन योजनाओं के बारे में जानने के लिए उत्सुक हों एवं उन योजनाओं का लाभ उठाने की ओर प्रेरित हों जैसे प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अंतर्गत समाज के सभी वर्गों के व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कौशल ग्रहण कर न केवल अपनो के लिए बल्कि अन्यों के लिए भी रोजगार के अवसर विकसित कर सकते हैं।

2.मीडिया के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया जाता है। मीडिया के माध्यम से ही माइक्रोसॉफ्ट कंपनी ने भारत में k-12 कार्यक्रम के अंतर्गत प्राइमरी शिक्षा के विकास के लिए कई कदम उठाए हैं। इसके अंतर्गत कई आधुनिक कार्यक्रमों के अंतर्गत शिक्षा का प्रसार किया जाएगा जिसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा में इनोवेशन को प्रोत्साहित करना है। इसी प्रकार, स्कूलों में स्मार्ट कंप्यूटर शिक्षा का प्रसार मीडिया के माध्यम से किया जाता है। मीडिया पर विभिन्न प्रकार के वर्गों के व्यक्ति अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं को अपने द्वारा रचित ब्लॉग के माध्यम से लोगों में प्रसारित करते हैं, जिससे उनके सोचने व समझने की शक्ति में विकास होता है।

3.मीडिया द्वारा समाज में राजनीतिक समाज विकास किया जाता है। समाज, आज की जनता, समाज व युवा वर्ग संविधान द्वारा दिए जाने वाले अधिकारों इत्यादि के विषय में पुरातन समाज के लोगों की अपेक्षा अधिक जागरूक है। न्यायपालिका भी समाज के विभिन्न वर्गों को न्याय

दिलाने के मार्ग में अग्रसर है। यह सब मीडिया पर प्रसारित होने वाले विभिन्न प्रकार की सूचनाओं द्वारा ही संभव हो पाया है।

4 मीडिया द्वारा अनेक प्रकार के औषधी संबंधी  सूचनाएँ दी जाती है जिससे लोग घर बैठकर देसी  नुस्खों का प्रयोग करके स्वस्थ रह सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार मीडिया आज हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है, जिसके बिना आज हम अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसे में यह ध्यान देना ज़रूरी है कि मीडिया अपने दायित्वों का उचित ढंग से निर्वहन करे साथ ही आम जनता भी ग्रहण और त्याग के उचित विचार के साथ मीडिया की स्थिति को स्वीकार करे।

डॉ अंजू जैन

## ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म के विनियमन की आवश्यकता

तकनीक के तीव्र विकास ने जहाँ बहुत सी चीजों को सरल बना दिया है वहीं बहुत सी चीजों को संभव भी बनाया है। सूचनाओं के प्रवाह की गति अब काफी तेज हो गई है। इस नए माहौल में इंतजार अब थोड़ा कम है और किसी भी नई चीज को हम तुरंत देख-सुन-समझ लेना चाहते हैं। पहले फिल्में केवल सिनेमाघरों में रिलीज होती थीं लेकिन वर्तमान समय में ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर भी फिल्में रिलीज हो रही हैं। ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म इंटरनेट के जरिए सीधे आपके उपकरण पर सामग्री को प्रदर्शित करता है जो वर्तमान की भाग-दौड़ भरी ज़िंदगी में उपयोग कि दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सरल है। बीते कुछ वर्षों में इंटरनेट सेवाओं के सस्ते होने से ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म के उपभोक्ताओं की संख्या में तेजी से इजाफा देखने को मिला है। यही कारण है कि वित्तीय वर्ष 2018 में जहाँ भारत में इसका कुल राजस्व लगभग 2150 करोड़ रुपए का था,केपीएमजी मीडिया एंड इन्टरटेनमेंट रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2023 के अंत तक इसके 13800 करोड़ रुपए तक पहुँच जाने का अनुमान लगाया जा रहा है। एक नई विधा के रूप में वेब सीरीज को बढ़ावा मिला है। इसकी लोकप्रियता बढ़ी है और बड़े कलाकार व निर्माताओं ने अब इस ओर भी रुख किया है। ऐसा कई बार देखा गया है कि बहुत सी वेब सीरीज का पहले ही दिन से विरोध होना शुरू हो जाता है परंतु ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर रिलीज होने वाली वेब सीरीज के लिए कोई प्रमाणन संस्था न होने से समस्या बढ़ती है। क्या प्रदर्शित किया जाना चाहिए या क्या नहीं, इसपर स्पष्टता नहीं हो पाती है। ऐसे में यह विवादित विषय बन जाता है। हाल फिलहाल में नई वेब सीरीज 'तांडव' को लेकर काफी विवाद नजर आ रहा है। इतने विवादों के बाद हालांकि उन विवादित दृश्यों को हटा अवश्य दिया गया है परंतु यह घटनाक्रम हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि इस तरह के विवादों से आखिर कैसे बाहर निकला जाए?

भारत में नेटफ्लिक्स,अमेज़न प्राइम,हॉटस्टार, वूट ,अल्ट बालाजी,जी फाइव,एम एक्स प्लेयर जैसे लगभग 40 ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म मौजूद हैं। इन पर लगातार नई वेब सीरीज आती हैं। भारत में जिस तरह केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड फिल्मों के रिलीज से पहले उसका विनियमन करता है या कि भारतीय टेलीविजन के लिए जिस प्रकार भारतीय प्रसारण परिषद की प्रसारण सामग्री शिकायत परिषद विनियमन करती है, उस तरह की कोई भी संस्था इसके लिए मौजूद नहीं है। आज जब इसका दायरा इतना व्यापक हो चुका है,करोड़ों लोग इसका उपयोग कर रहे हैं तो इसके लिए भी एक नियामक संस्था का गठन होना चाहिए जो प्रदर्शित किए जाने वाली सामग्री को देख कर अपना निर्णय दे। फिल्म प्रमाणन बोर्ड फिल्मों को कई प्रकार के प्रमाणपत्र प्रदान

करती हैं जैसे 'सभी के लिए','12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए अभिभावकों का मार्गदर्शन','केवल वयस्कों के लिए' या 'केवल चयनित समूहों के लिए'। इस प्रकार यदि सिनेमाघरों मे किसी वयस्क फिल्म को देखने के लिए कोई अवयस्क जाता है तो उसे बाहर रोका जा सकता है,उससे उसके पहचान पत्र के बारे में जानकारी के आधार पर प्रवेश की अनुमति नहीं भी दी जा सकती है,वहाँ एक प्रकार का तंत्र मौजूद है लेकिन इस तरह के प्लेटफ़ॉर्म के लिए ऐसी कोई भी सुविधा मौजूद नहीं है। मोबाईल फोन की पहुँच आजकल बहुत आसान है,ऐसे में हमारे बच्चे क्या देखें या क्या न देखें इसकी भी जवाबदेही होनी चाहिए। किशोरावस्था में आजकल बहुत से किशोर-किशोरियाँ मोबाईल का इस्तेमाल कर रहे हैं। इतने दिनों के लॉकडाउन के बाद पठन-पाठन के लिए उनके बीच मोबाईल फोन की पहुँच भी बढ़ी है तो अभिभावकों की जिम्मेदारी तो बढ़ी ही है लेकिन उन निर्माणाधीन कैशोर्य मस्तिष्कों को एक स्वस्थ मनोरंजन की पहुँच सुनिश्चित करना सरकार का भी उत्तरदायित्व है,इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान समय में केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय इस संबंध में कोई विशेष पहल करता हुआ नजर नहीं आ रहा है। जबकि वर्तमान समय में इसकी आवश्यकता महसूस हो रही है। हॉटस्टार,सोनी लिव,रिलायंस जिओ,एरॉस जैसे कुछ प्लेटफॉर्म ने डीसीसीसीसी अर्थात डिजिटल क्यूरेटेड कंटेन्ट कंप्लेन काउंसिल का गठन किया है परंतु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अन्य बहुत से प्लेटफ़ॉर्म ने इस तरह की कोई भी पहल नहीं की। दूसरी जो महत्वपूर्ण बात है वह यह कि यदि उस प्लेटफ़ॉर्म ने अपने लिए कोई संस्था बनाई है, तो उसके लिए पहला हित उसका खुद का होगा। इंटरनेट एंड मोबाईल एसोशिएशन ऑफ इंडिया की ओर से भी हम एक सकारात्मक रुख की उम्मीद कर सकते हैं। इन प्लेटफ़ॉर्म की वकालत करने वाले लोगों द्वारा जो सबसे बड़ी दलील दी जाती है वह भारतीय संविधान में वर्णित अनुच्छेद 19 है जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का जिक्र है। परंतु अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है अपितु उसपर भी युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। यदि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर किसी धर्म,वर्ग या समुदाय के हितों का ध्यान रखे बिना उनकी भावनाओं को आहत किया जाए तो ऐसी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध का आरोपित किया जाना उचित भी लगता है। अभी तांडव नामक वेब सीरीज में हिन्दू धर्म की धार्मिक भावनाओं को आहत करने का आरोप लगा जिसके पश्चात उसके निर्माता-निर्देशक ने देश की जनता से माफी माँगते हुए उन दृश्यों को हटा दिया है। परंतु ऐसा कब तक चलेगा कि कोई वेब सीरीज रिलीज हो जाए, उस सामग्री पर विवाद हो और फिर उन विवादित दृश्यों को हटाया जाए,इससे बेहतर तो यही है कि इन

सबकी निगरानी के लिए एक स्वायत्त संस्था का गठन  हो जाए। आजकल के वेब सीरीज में कोई निगरानी न होने से हिंसा के वीभत्स दृश्य,गाली-गलौज,कामुकता के दृश्य,महिलाओं का वस्तुकरण,आतंकी गतिविधियों के विवादित दृश्य आदि से युक्त सामग्री बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं। कुछ वेब सीरीज तो सॉफ्ट पॉर्न की हद तक नजदीक से प्रतीत होते हैं। ऐसे में इनका नियमन करना बेहद आवश्यक हो गया है। यदि बात मनोरंजन की है तो मनोरंजन के नाम पर स्वस्थ मनोरंजन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए न कि इस तरह के फूहड़ व अश्लील सामग्रियों को बढ़ावा मिलना चाहिए। ये मनोरंजन के नाम पर समाज में कुंठित मानसिकता को बढ़ाने का ही कार्य करेंगे। विश्व के बहुत से देशों जैसे ऑस्ट्रेलिया,यूनाइटेड किंगडम,तुर्की,सिंगापुर,इंडोनेशिया,सऊदी अरब में इनसे संबंधित स्पष्ट नियमावली देखी जा सकती है। लगातार बढ़ते हुए इस क्षेत्र में आने वाले समय में उपभोक्ताओं कि वृद्धि सुनिश्चित है। ऐसे समय में हम यदि इसके लिए एक स्वायत्त संस्था का गठन करते हैं जो समाज की वास्तविकता को संतुलित तरीके से दिखाते हुए आगे बढ़े तो हम सभी के लिए बेहतर है। इससे इन प्लेटफॉर्म पर  आने वाली वेब सीरीज की जो लगातार नकारात्मक छवि बन रही है,उसमें भी सुधार होगा। मनोरंजन के नाम पर हम अपने समाज में स्वस्थ मनोरंजन को पेश कर पाएंगे। कला का कार्य सौन्दर्य की सृष्टि है, वह हमारे अंदर सौन्दर्य कि दृष्टि भी विकसित करती है इसलिए कला के उसी स्वरूप को बढ़ावा दिया जाए जो यथार्थ व सौन्दर्य का समन्वित दृष्टिकोण लेकर समाज को कोई दिशा भी प्रदान कर पाए,यही बेहतर होगा।

**श्री अनुराग सिंह**

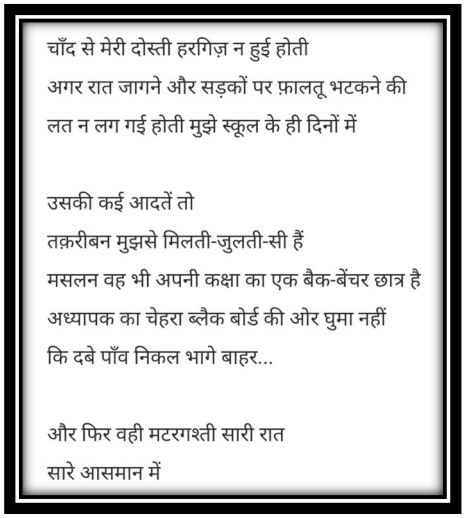
चाँद से मेरी दोस्ती हरगिज़ न हुई होती
अगर रात जागने और सड़कों पर फ़ालतू भटकने की
लत न लग गई होती मुझे स्कूल के ही दिनों में

उसकी कई आदतें तो
तक़रीबन मुझसे मिलती-जुलती-सी हैं
मसलन वह भी अपनी कक्षा का एक बैक-बेंचर छात्र है
अध्यापक का चेहरा ब्लैक बोर्ड की ओर घुमा नहीं
कि दबे पाँव निकल भागे बाहर...

और फिर वही मटरगश्ती सारी रात
सारे आसमान में

# राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की भूमिका

विश्व की छोटी से छोटी इकाई से लेकर बड़े पैमाने तक स्त्री की प्रत्येक क्षेत्र के केंद्र में बहुत बड़ी व अहम भूमिका रही है। स्त्री और पुरुष पृथ्वी रूपी रथ के दो पहियों के समान हैं एक के बिना रथ आगे नहीं बढ़ सकता। पूरी सृष्टि को चलाने में महिलाओं का योगदान है तो राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका न हो ऐसा संभव नहीं है। प्रतिकूल परिस्थिति में भी स्त्रियों ने राष्ट्र के निर्माण में पूर्ण योगदान दिया है। महिलाएँ किसी अवसर की मोहताज नहीं रहीं।

वह अँधेरों में ज्योत बनकर रहती है,

वह नदियों में लहरों की तरह बहती है।

राष्ट्र निर्माण में औरत की मौजूदगी

उसकी शुरुआत से लेकर आज तक की कहानी कहती है।

औरत समाज का वह महत्वपूर्ण आधार है जिसको नजरअंदाज करना बिल्कुल भी उचित नहीं है क्योंकि किसी भी राष्ट्र की उन्नति को वहाँ की महिलाओं की स्थिति से आंका जाता है। राष्ट्र की उन्नति को स्त्रियों से संबंधित करना इसलिए भी उचित है क्योंकि एक जननी के रूप में स्त्री ने सारे संसार के रचयिता के समान पद प्राप्त किया है और किसी भी राष्ट्र का आदर्श व्यक्ति स्त्री की, इस शक्ति का सम्मान करते हुए उसका आदर करता है। परंतु राष्ट्र में कई जगह ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो स्त्री पर शारीरिक व मानसिक रूप से अत्याचार करते हैं। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक बहुत अन्याय होता आया है। यह प्रत्येक राष्ट्र का एक कटु सत्य है । लेकिन वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री ने अपनी आत्मशक्ति को कमजोर नहीं पड़ने दिया है और निरंतर संघर्ष करती स्त्रियों ने स्वयं के लिए ,अपने परिवार के लिए ,समाज के लिए व राष्ट्र के लिए अपनी भूमिकाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों रूप में निभाया है।

कमजोर और असहाय नहीं है वह

बस मुख पर पर्दा रखकर

उसने सब का सम्मान किया है

घर की चारदीवारी से राष्ट्र के

हर क्षेत्र तक पहुँच कर

उसने अपने राष्ट्र का निर्माण किया।

औरत दर्द सह कर न सिर्फ संतान को जन्म देती है, बल्कि उसकी पहली शिक्षिका भी माँ ,यानी नारी होती है। वह अपने बच्चे में नैतिक मूल्यों का प्रसार करती है। उसे सही गलत का फर्क समझाती है राष्ट्र का कर्मनिष्ठ नागरिक बनाने में नारी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक बालक में भाषा को गढ़ने का श्रेय भी स्त्री को ही जाता है क्योंकि औरतों की भाषा पुरुषों से अधिक सहज व विनम्र होती है भाषा जो हमारी संस्कृति का ही अंग है उसके प्रसार में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

कहा जाता है कि जब एक पुरुष शिक्षित होता है तो सिर्फ वही शिक्षित होता है। लेकिन जब एक स्त्री शिक्षित होती है तो पूरे घर और समाज को शिक्षित करती है। नारी घर की नींव होती है और मजबूत  नींव से ही राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। हमारे धर्म और संस्कृति के प्रसार में भी महिलाओं का ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कौन से समारोह पर क्या पहनना है ,कौन से त्यौहार या अवसर पर क्या पकवान बने इसका ध्यान महिलाएँ ही रखती हैं घर के सभी अनुष्ठान कार्य महिलाएँ ही करती हैं।

कानून निर्माण की प्रक्रिया की बात करें तो महिलाओं का योगदान यहाँ भी देखने को मिलता है और सिर्फ आधुनिक काल की स्त्रियाँ ही नहीं बल्कि यह प्रक्रिया तो वैदिक काल और मध्यकाल में भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से चलती आ रही है। "रानी रूद्रमा देवी" जिन्होंने अपने साम्राज्य  की रक्षा की, तथा उसका नेतृत्व किया और शांति का प्रसार , न्याय व्यवस्था, जिसका चार दशकों तक प्रसार हुआ और रानी अहल्या बाई "होलकर" जिन्होंने सेना का नेतृत्व किया, प्रशासनिक और सामाजिक कार्य में महत्वपूर्ण  भूमिका निभाई, कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए।

संविधान निर्माण में भी महिलाओं का योगदान रहा है जैसे अम्मू स्वामीनाथन ,बेगम एजाज रसूल ,सुचेता कृपलानी, सरोजिनी नायडू ,राजकुमारी अमृत कौर ,दुर्गाबाई देशमुख। महिलाएँ सिर्फ घर को ही नहीं बल्कि पूरे देश को भी चला सकती हैं। इसके उदाहरण भी हमें देखने को मिलते हैं जैसे- प्रतिभा पाटिल, इंदिरा गांधी और राजनीति में भी महिलाएँ अपनी भूमिका निभा रहीं हैं। सुमित्रा महाजन ,सुषमा स्वराज ,मीरा कुमारी , अनुप्रिया पटेल, अरुंधति रॉय और निर्मला सीतारमण कुछ ऐसे नाम हैं  जिन्होंने ऐतिहासिक परिवर्तन किए हैं। बिल

प्रस्तुत करने में भी  वह पहली ऐसी महिला हैं जिन्होंने परंपरा परिपाटी को तोड़ा है और एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रीति पटेल ने एक सक्रिय नेता के रूप में अपनी भागीदारी निभाई है, सामाजिक उत्थान से संबंधित कार्य किए हैं।

स्त्री समान रही है अनुकूल परिस्थिति में भी और प्रतिकूल परिस्थिति में भी। बारिश में आश्रय बन जाती है और धूप में वृक्ष बनकर छाया देती है। नारी कीचड़ में खिले कमल की भांति है। खेल का क्षेत्र हो या कला का ,नारी कहीं भी पीछे नहीं है। महिलाएँ हर तरह के खेलों में अपना उच्चतम प्रदर्शन दिखा रही हैं। महिलाएँ उन खेलों में भी आगे हैं, जिनके बारे में कहा जाता था कि ये खेल महिलाओं के लिए  नहीं हैं। 16 वर्षीय मन्नु जिसने कई गोल्ड मेडल जीते मोनिका बतरा, कृष्णा पुनिया ,पीवी सिंधु , विवाहित सानिया मिर्जा ,तीन बच्चों की माँ मैरीकॉम जिन्होंने देश के प्रति अपने कर्तव्य को भुलाया नहीं है। परिवार और खेल दोनों में संतुलन बनाकर उदाहरण प्रस्तुत किया है कि नारी हर काम बखूबी कर सकती है। राष्ट्रमंडल खेलों में हमेशा आगे रहने वाले देश को भारतीय महिलाओं जैसे ज्वाला गुट्टा  ,अश्विनी पोनप्पा, और साइना नेहवाल ने देश को आगे किया। गीता ,बबीता हिमा दास, पीटी उषा " उड़नपरी " आदि महिलाओं का हर क्षेत्र में अप्रतिम योगदान रहा है तो विज्ञान के क्षेत्र में कैसे पीछे रह जाएं? कंप्यूटर साइंटिस्ट  केटी बाउमैन , " पेसेशेट " जिन्होंने सौ  से भी ज्यादा दवाइयों  का  परीक्षण  किया। गणितज्ञ ' एडा लवलेस 'उन्हें पहली प्रोग्रामर भी कहा जाता है। इसी प्रकारअंतरिक्ष में उड़ान भरने वाली कल्पना चावला को कैसे भुलाया जा सकता है। मंगला नार्लीकर, अदिति पंत और इंदिरा हिंदूजा जिन्होंने भारत में टेस्ट ट्यूब दिया। उन्नीसवी सदी में चिकित्सक आनंदीबाई जोशी से शुरुआत हुई यात्रा बीसवीं सदी में जानकी अम्माल , प्रेरणा शर्मा , नीना गुप्ता तक पहुँची यह सिर्फ नाम भर नहीं हैं। इन महिलाओं ने दिखाया है कि गणित, विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान सराहनीय रहा है। सीता सोम सुंदरम इनका मंगल मिशन में सक्रिय योगदान रहा।  गणितज्ञ कैथरिन जॉनसन के कुशल गणितज्ञ ने ही चाँद पर भेजने में सहायता की। विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि चंद्रयान-2 में भी 8 महिलाओं का तथा 'रितु करिधाल' और 'एम वनिता 'का  मुख्य योगदान रहा है।

हमारे राष्ट्रीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा हिस्सा है जहाँ महिलाओं की उपस्थिति  ना हो। पत्रकारिता की बात करें तो शायद ही कोई होगा जो अंजना ओम कश्यप और श्वेता सिंह को न जानता हो। अपने बोलने के कौशल और सूझबूझ से पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्होंनेअपना नाम रौशन किया है।

कला के क्षेत्र में एम एस सुब्बुलक्ष्मी जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ की सभा में अपने अप्रतिम संगीत को प्रस्तुत किया। स्वर कोकिला लता मंगेशकर , आशा भोंसले , नेहा कक्कर , बेगम अख्तर को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। अमृता शेरगिल जिन्होंने अपनी चित्रकारी से भारतीय कला का प्रसार किया, वो भी एक नज़ीर हैं।

महिलाओं के विषय में कहा जाता है कि ,महिलाएँ कोमल होती हैं। परंतु प्रथम आईपीएस ऑफिसर किरण बेदी ने इस वक्तव्य को झूठा साबित कर दिया है। अपनी शारीरिक योग्यता को दिखा कर इस कथन को असत्य साबित कर दिया है। रक्षा के क्षेत्र में भी महिलाएँ अपना योगदान निभा रही हैं। पायलट लेफ्टिनेंट मेजर जनरल निगार जोहर, आरोही पंडित, वायु सेना अधिकारी शालिजा धामी ने साबित कर दिया है कि जमीन से लेकर आसमान तक वह किसी का भी मुकाबला कर सकती हैं। कैप्टन भावना कस्तूरी, कैप्टन तानिया शेरगिल जो पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं और पुरुषों का नेतृत्व कर रहीं हैं।

कहा जाता है कि हर कामयाब पुरुष के पीछे स्त्री का हाथ होता है इसके प्रमाण भी हमें इतिहास में देखने को मिलते हैं। जैसे शिवाजी की माता जीजाबाई, तुलसीदास की पत्नी ने उन्हें कटुवचन न कहे होते तो रामचरितमानस के रचयिता वे बनते? राजाओं के निर्णय में भी उनकी रानियों का योगदान हमें अप्रत्यक्ष तौर पर देखने को मिलता है। सिद्धार्थ ( गौतम बुद्ध ) के निर्वाण के लिए जाने पर यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल का पालन पोषण कर , त्याग और संयम का परिचय दिया और समाज को सृजन की नई दिशा भी दी। नारी का त्याग और बलिदान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है ,मीरा, सावित्री ,सीता पद्मिनी आदि जो प्रतिकूल परिस्थिति में भक्ति,पति के सुख दुख में साथ देती स्त्री, अलंकार की भांति राष्ट्र की शोभा को बढ़ाती है।

महिलाओं ने देश और समाज के प्रति अपने कर्तव्य को न सिर्फ समझा बल्कि उसे बखूबी निभाया भी। सामाजिक कार्य में व कुरीतियों को मिटाने और महिलाओं के हक के लिए महिलाओं ने स्वयं आवाज़ उठाई। समाज सेवा में भी नारी पीछे नहीं रहीं। वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है और उनका उल्लंघन होने पर आवाज़ भी उठाती है। घर और समाज के उत्थान के लिए, पर्यावरण की सुरक्षा के लिए चलाए गए चिपको आंदोलन में श्रीमती गौरा देवी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। पंडित रमाबाई, मेधा पाटकर, मदर टेरेसा,अरुणा आसफ जिसने आज़ादी की लड़ाई में मुख्य भूमिका निभाई। ऐसे ही और भी नाम हैं। नारी सब के हक के लिए आवाज़ उठाने को तत्पर रहती है।

औरत की एक स्वतंत्र पहचान है। वैदिक काल से आधुनिक काल में भी। परंतु मध्यकाल में उसकी छवि में धुंधलापन आ गया था। समाज की कुसंगति पर रोक के लिए ताड़ी विरोधी आंदोलन चलाया शाहबानो ने न सिर्फ अपने बल्कि पूरे महिला वर्ग की बराबरी के लिए गुहार लगाई। तीन तलाक के खिलाफ मुकदमा दर्ज किया जिसने पूरी सरकार को हिला दिया। इससे यह प्रमाणित होता है कि महिलाएँ अपने हक और समाज के उत्थान व सकारात्मक परिवर्तन के लिए सरकार की नीतियों में भी परिवर्तन ला सकती हैं। सावित्रीबाई फुले जिन्होंने औरत को एक नई पहचान दिलाई। छुआछूत व बाल विवाह का विरोध किया। महिला स्कूल की स्थापना व शिक्षा के उत्थान में योगदान सराहनीय है मलाला यूसुफजई का।

व्यापार की बात करें तो महिलाएँ पहले भी व्यापार करती थीं और आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहती थीं। शाहजहां की पुत्रियाँ जहांआरा और रौशनारा जिन्होंने व्यापार में अपने पिता का सहयोग किया तथा जहांआरा ने चांदनी चौक की रूपरेखा तैयार की थी जो आज इतना प्रसिद्ध है। लघु उद्योग से लेकर बड़े व्यवसाय तक महिलाएँ चला रही हैं। किरण मजूमदार जिन्होंने व्यापार की दुनिया में अपना नाम उच्च शिखर पर रखा है। महिलाएँ धन अर्जन के साथ साथ उसका सदुपयोग ,संरक्षण और बचत के तरीके भी जानती हैं।

महिलाओं ने लोकतंत्र के चारों स्तंभों पर अपनी एक मजबूत उपस्थिति स्थापित की है। वह विधायिका हो या कार्यपालिका और मीडिया हो या न्यायपालिका, विपरीत परिस्थिति में अपना पूर्ण योगदान दिया है। न्याय की श्रृंखला में भी, उच्च पदों पर महिलाओं को आरूढ़ देखते हैं। सीमा कुशवाहा निर्भया को न्याय दिलाने वाली वकील। न्याय की तराजू से महिलाएँ भेदभाव रहित न्याय करती हैं।

चिकित्सा के क्षेत्र में डॉक्टर इंदिरा हिंदूजा डॉक्टर भक्ति यादव आदि। प्रसव के दौरान सभी महिला डॉक्टर को खोजते हैं। आज महिला डॉक्टरों की भी कमी नहीं है। लेकिन जब महिलाएँ डॉक्टर नहीं थीं तब भी वे प्रसव में कुशल थी और घर पर ही प्रसव की प्रक्रिया दादी नानी के नेतृत्व में पूरी होती थी।

जब विश्व सुंदरी प्रतियोगिता में मानुषी छिल्लर से यह प्रश्न पूछा गया कि दुनिया का उच्चतम पद कौन सा है, तो उन्होंने उत्तर में माँ का पद सर्वश्रेष्ठ बताया। जिसके जवाब से उन्हें सफलता का ताज पहनाया गया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूरा विश्व स्त्री के महत्व और योगदान को समझता है।

महिलाएँ ना सिर्फ घर को बल्कि अपने चुने हुए व्यवसाय दोनों में तादात्म्य बना लेती हैं। जिस भी कार्य को करती है, उसमें पूरी ईमानदारी और निष्ठा से सफलता हासिल करती है। नारी का तेज ,त्याग ,सहनशीलता, शांत भाव उसे अप्रतिम बनाता है। वह अन्नपूर्णा भी है और गृह लक्ष्मी भी, उसमें कोमल, माधुर्य है तो कठोरता और दृढ़ता भी। नारी एक अतुलनीय प्रतिमा है। नारी जननी है न सिर्फ संतान की बल्कि पूरे राष्ट्र की। नारी का जीवन कठिनाइयों और कष्टों से भरा रहा है। परंतु फिर भी उसने साबित कर दिखाया है कि प्रतिकूल परिस्थितियों और पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों का योगदान राष्ट्र के निर्माण में पुरुषों से कम नहीं है।

साहित्य के क्षेत्र में सुभद्रा कुमारी चौहान जिनकी कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी ' सभी को मुँह ज़ुबानी याद है। महादेवी वर्मा , मन्नु भंडारी , अनामिका , सुधा अरोड़ा , अमृता प्रीतम , मैत्रेयी पुष्पा, आशा प्रेरणा और नन्ही कवयित्री विधि शाह जो महिलाओं पर कविताएं लिखती हैं। इस कड़ी में और नाम जुड़ते ही जा रहे हैं। पुरुषों की रचनाओं से ज्यादा महिलाओं की रचनाओं में भावनाएं स्पष्ट होती हैं। राजरानी देवी को काव्य भाषा का प्रमुख हस्ताक्षर माना जाता है। इन महिलाओं ने अपनी लेखनी से समाज को जागृत व मार्गदर्शित किया है।

महिलाओं का योगदान कृषि क्षेत्र में भी देखने को मिलता है। महिलाएँ घर के साथ-साथ कृषि कार्य में भी अपना योगदान देती हैं। पुरुष केवल  बाहर का कार्य करता है परंतु स्त्री अपनी दोहरी भूमिका निभाती है।

महिलाओं में करुणा, प्रेम, दया की भावना होने के साथ-साथ वह एक महत्वाकांक्षी स्वाभिमानी दूरदर्शी सफल योद्धा भी रही हैं। महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवाया है। महिलाओं ने स्वच्छ भारत अभियान में भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। संगीता अवहले जिन्होंने शौचालय निर्माण के लिए अपने मंगलसूत्र को बेच दिया और सभी के सामने एक उदाहरण के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया। ऐसी बहुत सी महिलाएँ हैं जिन्होंने शौचालय निर्माण के लिए अपने गहने गिरवी रखे। शौचालय बनवाया और स्वच्छता का अर्थ समझाया। कुरीतियों और आडंबरों के खिलाफ आवाज़ उठाई।

रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी अर्धनारीश्वर कविता के माध्यम से स्त्री और पुरुष को समान दिखाया है। उन्होंने कहा है कि नारी और पुरुष दोनों गुणों की दृष्टि से समान हैं।

जीएस 2017 में पीएम मोदी ने परम विदुषी गार्गी का जिक्र करते हुए कहा था “महिलाएँ

सशक्तिकरण का प्रतीक रही हैं और महिलाओं की तरक्की से ही देश की तरक्की संभव है "।

महिलाएँ किसी सम्मान की भूखी नहीं हैं। राष्ट्र हित के लिए कार्य करती है, नाम और बराबरी के लिए नहीं। अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस से ठीक 1 दिन पहले जलवायु परिवर्तन को लेकर काम करने वाली मणिपुर की 8 साल की पर्यावरण कार्यकर्ता लिकीप्रिया कंगुजाम ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से सम्मान लेने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा जब मेरी बात ही नहीं सुनी जा रही तो मुझे सम्मान देने की आवश्यकता नहीं।

2018 में महिला दिवस के अवसर पर उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने ट्वीट कर कहा कि " महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में दूसरे नंबर पर नहीं हैं बल्कि कई मायनों में वे पुरुषों से बेहतर हैं। उन्होंने राजनीति, व्यापार और शिक्षा के क्षेत्र में योगदान दिया है। हमे महिला दिवस के अवसर पर नारी शक्ति की उपलब्धियों पर गर्व है।"

आज के कोरोना संकट के काल में भी महिलाएँ अपनी अग्रणी भूमिका निभा रहीं हैं। लॉकडाउन से उपजे मानसिक तनाव को दूर करने और घर व परिवार में संतुलन बनाए रखने की कोशिश करती हैं। इस समय में भी महिलाएँ हर क्षेत्र में कार्य कर रही है मास्क बनाने और वितरण करने में विशेष योगदान दे रही हैं। अतः वे हर क्षेत्र में कार्य कर रही हैं।

राजरानी,

तृतीय वर्ष, (हिन्दी विशेष)

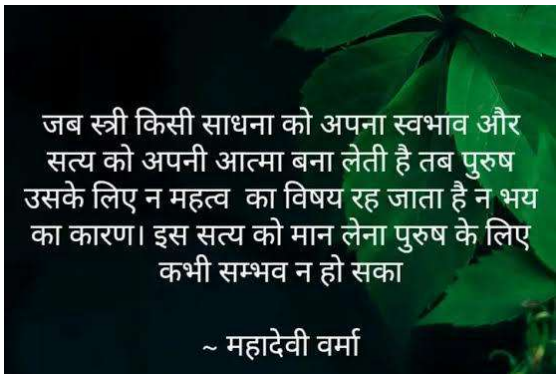

## न पूरा पुरुष, न पूरी औरत.. आधा अधूरा हूँ मैं..

अपनी हर खुशी के मौके पर बुलाते हो तुम हमें और हम ताली बजा बजाकर नाच-नाचकर गाते हैं तुम्हारे लिए बधाइयाँ। न पूरा पुरुष न,पूरी औरत आधा अधूरा हूँ मैं।

जिन जन्मे आधे अधूरे बच्चों को नहीं पालते उनके माता-पिता, हम बनते हैं उनके माता और पिता और पालते हैं उन्हें माँ बनकर। हम में भी है ममता और भाव। ऊपर वाले ने हमें सब कुछ देकर भी कुछ नहीं दिया। तुम जैसा दिया शरीर, दी दो ही आँखें, दो ही हाथ और दो ही पैर और तुम जैसा ही रंग पर बस एक अंग के कारण हैं हम तुमसे अलग? जैसे धरती और आकाश के बीच हवा है वैसे ही औरत और मर्द के बीच आधा अधूरा हूँ मैं।

जब हम आधे अधूरे लोग तुम्हारे समाज से मिलते हैं तो बस हम दुआ और कला बाँटते हैं। कुछ हमारे हाथ में नहीं है। उस ईश्वर के हाथ में है। बना सकता था वह भी मुझे पूरा पुरुष और पूरी औरत पर बनाया क्या आधा अधूरा? हम भी चाहते हैं पढ़ना इस समाज के लिए कुछ अच्छा करना शादी करके एक संतान को जन्म देकर माँ बनना पर आधा अधूरा हूँ मैं। इस समाज के लिए और जीने के लिए हमें अपनी हकीकत को स्वीकार करना पड़ता है। ताली बजाना मेरी बिरादरी और काम है। एक पुरुष का एक औरत से शादी होना खुशी की बात होती है पर हमारी शादी .....ना पूरा पुरुष ना पूरी औरत आधा अधूरा हूँ मैं।

हमने कभी भी इस समाज से पुरस्कार की उम्मीद नहीं की बस इज्जत चाहिए, सम्मान चाहिए। पर हमें तिरस्कार भी तो इसी समाज ने दिया है,तो हम पुरस्कार की उम्मीद समाज से कैसे करें।

नपुंसक पुरुष और बांझ औरत भी हमारे ही होते हैं। पर समाज इनका बहिष्कार नहीं करता। ठीक है हम औलाद पैदा नहीं कर सकते, लेकिन हम पढ़ लिखकर डॉक्टर, इंजीनियर, टीचर, कला गुरु तो बन सकते हैं। जैसे हम सब लोगों को दुआएँ बाँटते हैं वैसे ही हम डाकिया बनकर सब के दुख- सुख की चिट्ठियाँ तो उनके घर पहुँचा  सकते हैं। फिर क्यों हम भीख की रोटियाँ खाएं पर जब तक हम इस समाज की जरूरत नहीं बनेंगे तब तक समाज को हमारी जरूरत नहीं पड़ेगी। हम भी बचा सकते हैं लड़कियों को इज्जत लूटने वाले पुरुषों से। पर यह समाज हमें पुरुष से इस शरीर पर औरत का लिबास देखकर पूरी औरत समझने की गलती कर देता है। हम भी बूढ़ों की बेटी, जवानों की बहन-बेटियों की मौसी बनना चाहते हैं। हम भी बनना चाहते हैं हर रिश्ता। पर हमारा स्कूल में मजाक बनाया जाता है हमें नौकरियाँ नहीं देता कोई। हमें बस दुनिया के लिए पैदा किया जाता है दुनियादारी के लिए नहीं। हमें खुदा ने ही औरत या पुरुष का

नाम नहीं दिया इसलिए हमें कोई कुछ नहीं बनने देता। इसलिए हम हमेशा आधे अधूरे ही हैं आज तक और समाज से अलग। हम जैसों के लिए पराए भी अपने से बढ़कर होते हैं। हम भी किसी बेटी का कन्यादान करना चाहते हैं। समाज कहता है हमारी स्थिति आज ऐसी नहीं है। पर एक सवाल हमारी टोलियों को देखकर लोग आज भी नहीं चौंकते। बस सब वही करते हैं लोग हमें देख कर जो सालों से करते आ रहे हैं।

हम बनना चाहते हैं टीचर। लेकिन क्या आप अपने बच्चों को हमारे पास भेजोगे? हम बनना चाहते हैं डॉक्टर लेकिन क्या आप हमसे इलाज करवाओगे? पुलिस बनकर आपकी हिफाजत करना चाहते हैं। लेकिन क्या हम खुद महफूज रहेंगे?इन सब सवालों का जवाब है इज्जत। अब एक आखरी बार आपके सामने हाथ फैला रहे हैं और इस बार पैसे की जगह थोड़ी इज्जत दे दो।

हाँ मैं वही हूँ जो हर चौराहे पर हर ट्रेन में हर नुक्कड़ पर ताली बजा बजाकर आपको परेशान करता हूँ।

हाँ एक हिजड़ा हूँ मैं।

अंजलि कामत

हिन्दी विशेष

तृतीय वर्ष

# रेत उपन्यास की समीक्षा

15 वें अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान से पुरस्कृत भगवानदास मोरवाल जी का तीसरा उपन्यास रेत जिसमें उन्होंने कंजर समुदाय का एक समग्र चित्र प्रस्तुत किया है, परंपरागत शैली से अलग एक नए क़िस्म का उपन्यास है। यहां उन्होंने कंजरों के माध्यम से एक ऐसे समुदाय को अपने साहित्य का मंच दिया है जो हमारे सभ्य समाज में स्वीकृत तो नहीं है पर सत्ता की राजनीति और बदलता घटनाक्रम इनके प्रति भी सामाजिक राय बदलने और सामाजिक स्वीकृति की ओर अग्रसर करने में मदद करता है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद पाठक सभ्य-असभ्य, मातृसत्तात्मक-पितृसत्तात्मक और तमाम ऐसी रीति-नीतियों के बीच झूलता नज़र आता है, जिसमें कहीं सभ्यता का प्रपंच उद्घाटित होता है तो कहीं किन्हीं अर्थों में एक पायदान चढ़ा हुआ असभ्य या कंजर समुदाय अपनी बेबाकी के साथ नज़र आता है। साथ ही राजनीति के माध्यम से सत्ता का उठा हटा हुआ आवरण कई बार दोनों समाजों के बीच की बारीक़ सी रेखा को भी मिटाता सा नज़र आता है।

वर्तमान स्थितियों में राजनीति का क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। नेता और अधिक रसूख पाने के लिए कहीं से भी किसी को भी इस्तेमाल करने की हद तक पहुंच जाते हैं। किंतु पासा यदि उल्टा पड़ जाए तो वो अपने ही प्रपंच में फंसकर मारे जाते हैं। मुरली बाबू और रुक्मिणी के माध्यम से मोरवाल जी ने बखूबी यह उजागर किया है। ख़ैर कहानी के अनुसार सकारात्मक यह है कि यह समुदाय भी तथाकथित सभ्य बनने की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ जाता है। परिणाम यह होता है कि बदलाव की एक नयी सुबह जन्म लेती है और अस्वीकृत और बहिष्कृतों को भी सत्ता की ताकत प्राप्त होती है। हालांकि इस ताकत के पीछे सत्ता प्राप्ति के वही तिकड़म हैं जो राजनीति में सदियों से इस्तेमाल होते आ रहे हैं। पैसा, शराब और देह राजनीति में किसी को भी पछाड़ने और पीछे ढकेलने में इस्तेमाल होते रहे हैं। फर्क बस इतना है कि राजनीति में यह सब सभ्यता के तथाकथित आवरण के नीचे दबा-छिपा रहता है और कंजर समुदाय में लज्जा या आवरण जैसी कोई चीज़ ही नहीं है। यही वजह है कि देह का इस्तेमाल इनके लिए कोई बड़ी घटना क्या घटना तक नहीं है। हां एक उपकरण ज़रूर है जिसके ज़रिए अपने अभीष्ट तक पहुंचा जा सकता है। पूरा उपन्यास देह और राजनीति के माध्यम से इसी दोहरी व्यवस्था की सच्चाई प्रस्तुत करता है।

मोरवाल जी ने अपने इस उपन्यास में राजनीतिक घटनाक्रम को प्रस्तुत करते हुए कंजर समाज के अंदर की सच्चाइयों को भी उजागर किया है। उजागर करने की इस प्रक्रिया में मोरवाल जी ने इस समाज की एक-एक बारीकी को प्रस्तुत किया है। इन महिलाओं के जीवन जीने का ढंग, इनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, इनका व्यवहार और जीवन जीने के प्रति बहुत ही खुला रवैया

और लगभग जितना संभव है कंजर समुदाय की पूरी संस्कृति को इन्होंने प्रस्तुत किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"बैद्जी, मरे कहां रहा इत्ते दिन? मुंह में अठखेलिया करते, हुस्न बाग के किणको को चुबलाते हुए आते ही शिकायत की कमला बुआ ने"।

कमला बुआ की भाषा जहां उनके एक ख़ास वर्ग की ओर संकेत करती है वहीं सत्ता की राजनीति में पुरुष वर्चस्व के बरअक्स स्त्री का सशक्त पक्ष भी प्रस्तुत करती है, जहां पुरुष केवल एक चाकर या ग्राहक से अधिक कुछ नहीं है। हालांकि यह भी सच है कि बाहरी दुनिया से जुड़ने के लिए इन्हें अक्सर उगंलियों पर नाचते ऐसे ही पुरुषों की ज़रूरत होती है, बैधजी ऐसे ही एक व्यक्ति हैं। हालांकि उनकी स्थिति उस निर्लिप्त साधक के समान है जो देखता है, सबके बीच में उपस्थित है, जिसकी उपस्थिति सबको प्रभावित करती है पर जो स्वयं सभी से नितांत अप्रभावित रहता है। कंजर समाज के लिए वह महत्वमपूर्ण है कई दृष्टियों से, पर बैधजी के लिए ये सभी परिचित, जानकार और उनकी दवाओं के ग्राहक भर हैं।

जैसा तीखापन कमला बुआ की भाषा में नज़र आता है, वैसा ही विचित्रपन कहें या भौड़ापन, इनकी भाषा की ख़ास बात है। बहुत से ऐसे शब्द हैं जो इनकी ख़ास संस्कृति को संकेतित करते हैं। जैसे-कंजर समुदाय में बाहरी व्यक्ति के लिए प्रायः कज्जा शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार ऐसा व्यक्ति जो एकदम घर के सदस्य के समान हो उसे भांतू और बाहरी व्यक्ति जो मुख्यतः ग्राहक के रूप में आते हैं, उन्हें इज़्जतदार कहकर संबोधित किया जाता है। ऐसे ही यौनकर्म में प्रवृत्त होने वाली महिलाओं के लिए खिलावड़ी व अपनी मर्ज़ी से खिलावड़ी या यौनकर्मी न बन विवाहिता का जीवन बिताने वाली महिलाओं को भाभी कहा जाता है। हालांकि इस व्यवसाय में भाभी बनना कोई बहुत गर्व की बात नहीं बल्कि मूर्खता की बात है, कारण भाभी बनना असल में अपनी आज़ादी खोकर, पैसे-पैसे के लिए मोहताज होकर महज़ एक नौकरानी की ज़िंदगी गुज़ारना है। यही कारण है कि अपने नाती मंगल के विवाह के लिए कमला बुआ जब संतो का हाथ मांगने जाती है, तो उसे इस बात पर आश्चर्य होता है कि संतो जैसी इतनी सुंदर लड़की जो खिलावड़ी बनकर लाखों कमा सकती थी, भाभी बनने के लिए कैसे राज़ी हो गई। बैधजी से वह इस बात का ज़िक्र भी करती है -

असल बात तो यह है बैदजी कि छोरी बहुत सुंदर है। कम से कम यह खिलावड़ी तो अपनी तरह जनेगी। ऐसे ही आदमी को निरभाग और लालची कहा जाता है बैदजी जो सोने के अंडे देने वाली मुर्गी को इतने सस्ते में दे रहा है। इत्ती रकम तो यह दो ढाई-बरस में कूटकर दे देती। नैन-नक्श न होते तो मजबूरी थी। पता न इसकी कैसे मति मारी गई। मरी कैसे भाभी बनने के लिए राज़ी हो गई। अरे बीस-पच्चीस हज़ार तो यह खड़े-खड़े मत्था ढकाई के धरवा लेती।

विश्व की जितनी भी सभ्यताएं हैं, जो स्वयं में सभ्य होने का दंभ भरती हैं, असल में उनके केंद्र में केवल अर्थ ही होता है। अर्थ या पूंजी का वितरण और संरक्षण ही दुनिया के सारे संबंधों की मानो जड़ है। विश्व इतिहास इसका प्रमाण है। इस दृष्टि से असभ्य कहे जाने वाले कंजर समाज की व्यवस्था भी अपवाद नहीं है। अपवाद वह केवल इस दृष्टि से है कि वहां जो कुछ भी है, वह सबकुछ असल में स्पष्ट और बिना किसी पछतावे के है। संतो के संबंध में कमला बुआ का यह कथन कि "20-25 हज़ार तो खड़े-खड़े मत्था ढकाई के रखवा लेती", इस बात का प्रमाण है।

निश्चित रूप से इस समाज की किसी भी महिला के लिए भाभी बनना बेहद घाटे का सौदा है। कम-से-कम कमला बुआ तो यही मानती हैं और इसके पीछे उनका तर्क भी है। स्वयं कमला बुआ के शब्दों में-

"क्या मिलता है ब्याह करके। ज़िंदगी भर खसम और औलाद के साथ-साथ भाभी बनी सास-ननदों की चाकरी ही तो करनी पड़ती है"।

मोरवाल जी ने यहां कंजर समुदाय की एक महत्वपूर्ण रस्म मत्था ढंकाई का भी उल्लेख किया है। इस रस्म के अंतर्गत इस व्यवसाय में पहली बार क़दम रख रही लड़की के पहले दिन को बहुत ही धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। लड़की से खिलावड़ी बन रही लड़की को दुल्हन की तरह सजाया जाता है और उसके पहले ग्राहक को, जिससे अच्छी-ख़ासी रक़म भी वसूली जाती है, घर के दामाद के समान सम्मान दिया जाता है। साथ ही खिलावड़ी बन रही लड़की के भविष्य में जितने भी ग्राहक बनते हैं, उन सब पर मत्था-ढंकाई करने वाले प्रथम ग्राहक को तरजीह दी जाती है और जीवन भर उससे कोई भी रक़म नहीं वसूली जाती। इस अवसर पर घर में जश्न होता है। जिस प्रकार सभ्य समाजों में विवाह की रस्म को मनाया जाता है, यहां भी कुछ उसी प्रकार का जश्न होता है।

कमला बुआ के माध्यम से यहां मोरवाल जी ने जहां कंजर समुदाय की संस्कृति को पेश किया है, वहीं तथाकथित भारतीय संस्कृति को भी कठघरे में खड़ा कर दिया है, जो कि मूलतः स्त्री के शोषण और दमन पर आधारित है। यहां मोरवाल जी यह भी बताते चलते हैं कि जिस प्रकार भारतीय समाज में स्त्री पक्ष के लोग वर पक्ष को अच्छी-ख़ासी मात्रा में दान-दहेज देते हैं, उससे उलट कंजर समुदाय में कन्या पक्ष के लोग लड़की की सुंदरता और नैन-नक्श आदि के हिसाब से अच्छी-ख़ासी रकम वर पक्ष से वसूलते हैं। हालांकि कि दोनों ही स्थितियों में विवाहिता की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं होती। कारण, अपनी स्थिति से उकताकर या किसी भी कारणवश विवाहिता या कंजर समुदाय की भाषा में कहें तो भाभी बन चुकी स्त्री खिलावड़ी नहीं बन सकती। इस विषय में बैधजी की शंकाओं का समाधान करती हुई कमला बुआ कहती हैं-

"मतलब यह है कि जो एक बार लाइन में डल गई, वह जिंदगी भर बुआ बनी रहेगी, ब्याह नहीं करेगी और जो भाभी बन गई वो धंधा नहीं करेगी"।

हालांकि सभ्य समाज के समान वंशजों की इन्हें भी आवश्यकता है, इसीलिए बेटों का रीति-नीति से विवाह और बहुओं का घर में आना भी ज़रूरी है। स्वयं कमला बुआ यह बात कहती हैं-

"वैसे भी बैद्जी घर बहुओं की औलाद से चलना है, बेटी-बुआ या धेवता-धेवतियों से नहीं। और फिर घर संभालने वाली भी तो हो कोई। बुआ मरी खिलावड़ी बन धंधा करे या घर संभाले"।

बारीक़ी से देखने पर पता चलता है कि किस प्रकार यहां मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक व्यवस्था आपस में घुली-मिली नज़र आती हैं।

कथाक्रम का ही हिस्सा बनाकर मोरवाल जी ने इस समुदाय का पूरा इतिहास भी प्रस्तुत किया है और पाठकों को यह बताया है कि यह समुदाय असल में हमारे समाज के उन समुदायों में से एक है जिनका पुश्तैनी व्यवसाय ही यौनकर्म है। थानेदार केसर सिंह यह विवरण अपने इतिहास ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत करता है-

कंजर यानी कननन्वरा, काननचर अर्थात् जंगलों में घूमनेवाला। प्राचीन भारत की सबसे प्रमुख ख़ाना-बदोश जाति। उत्पत्ति माना गुरु और नलिन्या। माना गुरु यानी दिल्ली के मुसलमान बादशाह के मल्लू-कल्लू नाम के दो पहलवानों को हराने वाला आदिवासी। इस समुदाय के पुरुष छोटे-मोटे काम करते हैं और महिलाएं खिलावड़ी बनकर घर चलाती हैं।

यह तो परंपरा से ही है कि जो चीज़ पुश्तैनी होती है, वह परंपरा से तर्कसंगत और सही भी साबित हो जाती है। कंजर समुदाय के साथ भी ऐसा ही है। यौनकर्म इनकी नज़र में कोई ग़लत और अनैतिक काम नहीं है। कमला बुआ की साफगोई भी इस बात को तर्कसंगत साबित करती है। हां ग़लत और अनैतिक इनकी नज़र में अपने समुदाय के स्वीकृत नियमों को तोड़ना या न मानना है जिसके लिए पंचायत के द्वारा जुर्माने के तौर पर बड़ी राशि की ज़ब्ती और बाल काटकर सौंदर्य नष्ट कर देने अथवा कुछ समय तक दोषी कंजर महिला को यह व्यवसाय न करने देने जैसी कठोर सज़ाओं का भी प्रावधान है। इस प्रकार की सज़ा तब दी जाती है जब यौनकर्मी महिला ने तयशुदा राशि के अनुसार अपनी सेवाएं न दी हों अथवा यदि किसी यौनकर्मी महिला ने अपनी किसी अन्य साथी का ग्राहक हथिया लिया हो, या अन्य किसी प्रकार के धोखे या समस्या का समाधान भी इनकी पंचायत बखूबी करती हैं। इनके न्याय का आलम यह है कि कंजर लोग पंचायत में जाने से घबराते भी हैं, पर जब कहीं से कोई बात नहीं सधती, तब हारकर फिर पंचायत की शरण में जाते हैं और उनका फैसला मानना ही पड़ता है। संतो और मंगल के विवाह के समय पंचायत की नौबत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

“और पंचो, चीरणी से पहले यह बात बतानी ज़रूरी है कि अगर पंचों का फैसला न माना जाए तो दोनों मुदी की धरोड़ पंचायत जपत कर लेगी। एक बात और कि अगर किसी मुदी ने धरोड़ के बारे में पुलिस को खबर दी तो उसकी धरोड़ का इस्तेमाल पुलिस के काज में होगा”।

इनका किया किया गया न्याय सर्वस्वीकृत और सर्वमान्य भी होता है। वर्तमान पुलिस या न्याय-व्यवस्था में इनका कोई भरोसा नहीं है। वे उनके लिए या तो ग्राहक हैं या हफ्ता वसूलने वाले गुंडे, जिनसे किसी भी हाल में बचना संभव नहीं। यही वजह है कि पुलिस का नाम लेना यहां कोई भी पसंद नहीं करता।

कंजरों का समाज पितृसत्तात्मक नहीं बल्कि मातृसत्तात्मक है। व्यवस्था के अधीन यानी हमारे समाज के समान ही इनका भी समाज है। जैसे सभ्य समाज इन्हे स्वीकृति नहीं है उसी प्रकार इनके समाज में भी तथाकथित सभ्य या कज्जाओं के लिए कोई जगह नहीं है। पर हां यही कज्जा इन्हें सभ्य समाज से जोड़ने में भी एक पुल की तरह मददगार साबित होते हैं।

भगवान दास जी ने बहुत बारीकी से बताया है कि किस प्रकार इनकी भी अपनी एक अलग संस्कृति है जो राजनीति के गलियारों से गुज़रते हुए हमारी तथाकथित सभ्य संस्कृति के समानांतर खड़ी होती है और सभ्यता असभ्यता के फ़र्क को धूमिल करती नज़र आती है। यहां सत्ता है, राजनीति है और इनके बीच बहिष्कृत समाज को मुख्य धारा में लाने की ऐसी सोची-समझी रणनीति है जिसमें माना गुरु और मां नलिन्या की संतान कंजरों का जीवन इस उपन्यास का केंद्र बिंदु है, जिसमें कहानी विकृत मातृसत्तात्मक व्यवस्था की धुरी के रूप में प्रस्तुत कमला-सदन के इर्द-गिर्द घूमती है। इस कमला सदन की केंद्र बिंदु कमला बुआ हैं। जहां कमला बुआ के साथ कई महिलाओं का जमावड़ा है जिनमें शामिल हैं-सुशीला, माया, पूनम, वंदना, रुक्मिणी, संतो, पिंकी। इनमें से संतो और पिंकी को छोड़ दिया जाए तो सभी पारंपरिक यौनकर्मी महिलाएं हैं, जो विधिवत् इस व्यवसाय में प्रवृत्त हुई हैं। विधिवत् अर्थात् उस परंपरागत तरीके से जिसके अंतर्गत युवा होती लड़की से यह पूछा जाता है कि क्या वह खिलावड़ी बनने की इच्छुक है? यदि उस महिला का जवाब हां में होता है तो एक जश्न की तरह इस हां को मनाया जाता है। अपने परिचितों जिसमें रसूखदार इज़्ज़तदार लोगों से लेकर दरोगा, और नेता सरीखे लोगों को भी आमंत्रित किया जाता है। कंजर समुदाय और इनके समान ही पेशा करने वाली कॉल गर्ल्स को यहां बुलाया जाता है। यानी भले ही यह एक पिछड़ी जन-जाति है पर यहां जो भी किया जाता है, पूरी रुचि का ध्यान रखते हुए। यही वजह है कि यदि कंजर जनजाति की कोई महिला इस व्यवसाय में आने के प्रति अनिच्छा व्यक्त करती है, तो उसके साथ किसी भी प्रकार की ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं की जाती बल्कि बाक़ायदा ब्याह कर उसे भाभी बनाया जाता है।

लेखक ने यहां पर बाल मनोविज्ञान का भी उल्लेख किया है। बच्चों की विशेषता होती है कि वो जो देखते हैं, जिससे प्रभावित होते हैं, उसी के समान बनना भी चाहते हैं। मंगल और संतो की बेटी पिंकी भी इस दृष्टि से अपवाद नहीं है। उसने देखा है कि किस तरह उसकी मां दिन-रात खटती रहती है, अपने पति, सास और ननदों की चाकरी करती रहती है। न ढंग के कपड़े पहनती है और न ही ऐसे सजती-संवरती है जैसे उसकी सभी बुआ बन-ठन कर रहती हैं। संतो के चेहरे का मुरझायापन भी शायद उसे अच्छी तरह से समझ आता है। यही कारण है कि बैधजी की उपस्थिति में जब मासूम पिंकी से यह सवाल पूछा जाता है कि वह बड़ी होकर क्या बनना चाहती है, तो डाक्टर या इंजीनियर नहीं बल्कि उसका जवाब होता है कि वह बुआ बनना चाहती है। हालांकि यह बात संतो को इतनी नाग़वार गुज़रती है कि वह उसे पीट देती है, बाकी सभी को पिंकी की पसंद से कोई फर्क नहीं पड़ता। कारण भाभी बनना यहां यूं भी घाटे का सौदा है, घर वालों के लिए भी और खुद लड़की के लिए भी। पर खिलावड़ी बनना इनके लिए ज़िंदगी को अपने अनुसार जीने की कोशिश करना है। कुल मिलाकर यह उपन्यास लीक से हटकर उस हाशिए की बात करता है, जिसे हमारा सभ्य समाज अपने आगे कुछ मानता ही नहीं मानता। हालांकि दिन के उजालों के खत्म होने के बाद ये बहिष्कृत भी सभ्यों के लिए नितांत आवश्यक हो जाते हैं और दोनों समाजों के बीच की बारीक़ रेखा भी यहां पूरी तरह से मिट जाती है।

**डॉ 0 विभा नायक**

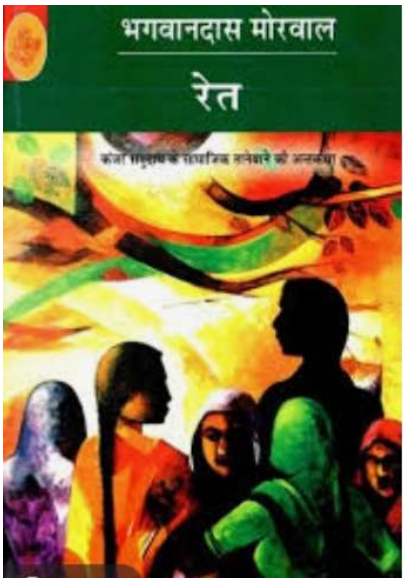

# कलाकार की कूची से

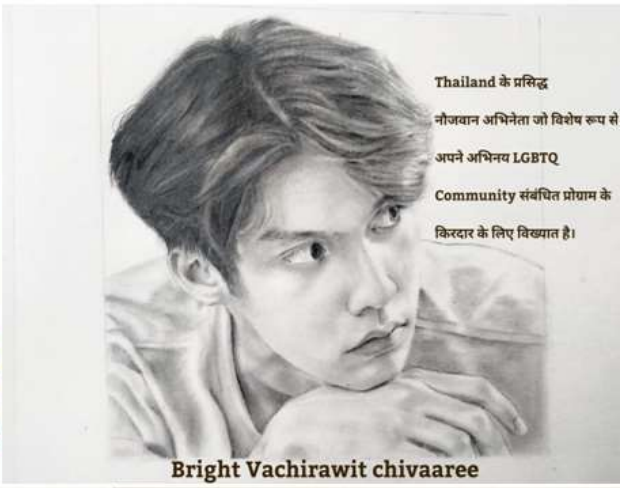


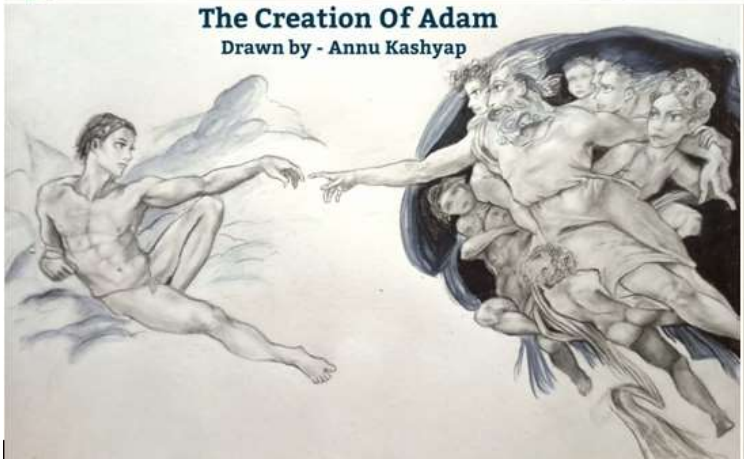

अन्नु कश्यप, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

# हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित साहित्यिक गतिविधियों की एक झलक